3. प्राकृत व्याकरण
का
व्यवहारिक ज्ञान

व्यवहारिक व्याकरण

कारक एवं विभक्ति

कारक – किसी क्रिया के सम्पादन में जिन संज्ञा या सर्वनाम शब्दों को प्रयुक्त किया जाता है, उसे कारक कहते हैं।

विभक्ति – क्रिया सम्पादन में जो सम्बन्ध दिया जाता है, वह विभक्ति है। वे छह हैं – कर्त्ता > प्रथमा, कर्म > द्वितीया, करण > तृतीया, संप्रदान > चतुर्थी, अपादान > पंचमी, सम्बन्ध > षष्ठी और अधिकरण > सप्तमी सम्बोधन। कारकों का विभक्तियों से विशेष सम्बन्ध है, क्योंकि विभक्तियों से कारक और संख्या का बोध होता है।

कर्त्ता कारक – जो क्रिया करने में स्वतंत्र होता है और जिसके धातु के व्यापार का आश्रय होता है, उसे कर्त्ता कहते हैं।

कर्म कारक – क्रिया के फल के आश्रय को कर्म कारक कहते हैं।

करण कारक – जो क्रिया के सम्पादन में प्रमुख सहायक हो, वह करण कारक है।

सम्प्रदान कारक – जिसके लिए क्रिया की जाए, वह सम्प्रदान कारक है।

अपादान कारक – जिससे कोई वस्तु अलग हो, उसे अपादान कारक कहते हैं।

सम्बन्ध कारक – जिससे सम्बन्ध हो, वह सम्बन्ध कारक है।

अधिकरण कारक – क्रिया का आधार अधिकरण है।

सम्बोधन –

नियम निर्देश –

– प्राकृत में एकवचन और बहुवचन ही होता है।

– चतुर्थी और षष्ठी विभक्तियों में समानता है। इन दोनों में समान रूप चलते हैं।

– प्राकृत में हलन्त नहीं होता है।

– प्राकृत में विसर्ग नहीं होता है।

अकारांत पुंलिंग शब्द –

बाल, पुरिस, छत, सीस, णर, णिव – जीव, बुह

इकारान्त पुंलिंग शब्द –

सुधि, कवि, मुणि, जोणि, णाणि, पक्खि

उकारांत पुंलिंग शब्द –

भाणु, सिसु, साहु, पिउ, गुरु, तरु

अकारांत पुंलिंग प्रतीक प्रत्यय

	एकवचन	बहुवचन
	प्रथमा –	ओ दीर्घ – आ
द्वितीया –	(–)	दीर्घ एवं ए
तृतीया –	ण–एण, णं–एणं	हि–एहि, एहिं
चतुर्थी –	स्स	ण–आण, णं–आणं
पंचमी –	त्तो, ओ	ओ, हिंतो
षष्ठी –	स्स	ण–आण, णं–आणं
सप्तमी –	ए, स्सि	सु–एसु, एसुं
संबोधन –	ण प्रत्यय लोप – ओ	आ

अ. पुंलिंग बालशब्द के रूप

प्रथमा	बालो	बाला
द्वितीया	बालं	बाला, बाले
तृतीया	बालेण, बालेणं	बालेहि, बालेहिं
चतुर्थी	बालस्स	बालाण, बालाणं
पंचमी	बालत्तो, बालाओ	बालाओ, बालहिंतो
षष्ठी	बालस्स	बालाण, बालाणं
सप्तमी	बाले, बालम्मि	बालेसु, बालेसुं
सम्बोधन	बाल! बालो!	बाला!

संकेत – बाल शब्द की तरह छत, सीस, णर, णिव आदि के रूप बनेंगे।

पहचानिए और शब्दों की विभक्तियाँ लिखिए –

– बालस्स, सीसं, णिवत्तो, णरम्मि

इकारांत पुंलिंग प्रतीक प्रत्यय

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	लुक् – दीर्घ	लुक् – दीर्घ, णो
द्वितीया	(–) अनुसार	लुक् – दीर्घ, णो
तृतीया	णा	हि – हिं होने पर दीर्घ
चतुर्थी	स्स, णो	ण, णं होने पर दीर्घ
पंचमी	ओ होने पर दीर्घ	ओ, हिंतो होने पर दीर्घ
षष्ठी	स्स, णो	ण, णं होने पर दीर्घ

सप्तमी	म्मि	सु – सुं होने पर दीर्घ
सम्बोधन	प्रत्यय लोप	लुक् – दीघ्र

इ. पुंलिंग मुणि शब्द के रूप

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	मुणी	मुणी, मुणिणो
द्वितीया	मुणिं	मुणि, मुणिणो
तृतीया	मुणिणा	मुणीहि, मुणीहिं
चतुर्थी	मुणिस्स, मुणिणो	मुणीण, मुणीणं
पंचमी	मुणीओ	मुणीओ, मुणीहिंतो
षष्ठी	मुणिस्स, मुणिणो	मुणीण, मुणीणं
सप्तमी	मुणिम्मि	मुणीसु, मुणीसुं
सम्बोधन	मुणि!	मुणी!

उकारान्त पुंलिंग प्रतीक प्रत्यय

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	दीर्घ	दीर्घ, णो
द्वितीया	(–) अनुस्वार	दीर्घ, णो
तृतीया	णा	हि, हिं
चतुर्थी	स्स, णो	ण, णं
पंचमी	ओ	ओ, हिंतो, सुंतो
षष्ठी	स्स, णो	ण, णं
सप्तमी	म्मि	सु, सुं
सम्बोधन	लुक्	दीर्घ

उकारान्त पुंलिंग 'भाणु' शब्द रूप

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	भाणू	भाणू, भाणुणो
द्वितीया	भाणुं	भाणू, भाणुणो
तृतीया	भाणुणा	भाणूहि, भाणूहिं
चतुर्थी	भाणुस्स, भाणुणो	भाणूण, भाणूणं
पंचमी	भाणूओ	भाणूओ, भाणूहिंतो, भाणूसुंतो
षष्ठी	भाणुस्स, भाणुणो	भाणूण, भाणूणं

सप्तमी	भाणुम्मि	भाणूसु, भाणूसुं
सम्बोधन	भाणु!	भाणू!

संकेत – 'भाणु' शब्द की तरह साहु, सिसु, गुरु, तरु, पसु, भिक्खु आदि के रूप बनेंगे।

– ण णं, सु सुं, ओ, हिंतो, सुंतो अव्यय होने पर ह्रस्व उकारांत शब्दों का दीर्घ हो जाता है।

– दीर्घ उकारांत शब्दों का दीर्घ ही रहता है।

– स्स, णो प्रत्यय होने पर दीर्घ का ह्रस्व हो जाता है। जैसे– केवलिस्स, केवलिणो, जंबुस्स, जंबुणो

संकेत – मुणि इकारांत पुंलिंग शब्द की तरह सुधि, कवि, जोगि, णाणि के रूप बनेंगे।

पहचानिए और शब्दों की विभक्तियाँ बतलाइए –

मुणिणो, मुणीणं, कविणा, सुधिम्मि

---xxx---

स्त्रीलिंग शब्द

आकारांत स्त्रीलिंग शब्द

बाला, माला, सरिआ, कण्णा, णिसा, दिसा, सुण्हा, भारिआ

ईकारांत स्त्रीलिंग शब्द

जुवई, रई, साडी, इत्थी, दासी, तरुणी, बहिणी

उकारांत स्त्रीलिंग शब्द

बहु, धेणु, विज्जु, चंचु

आकारांत स्त्रीलिंग प्रतीक प्रत्यय

	एकवचन	**बहुवचन**
प्रथमा	दीर्घ	दीर्घ, ओ–आओ
द्वितीया	(–) अनुस्वार होने पर दीर्घ शब्द का ह्रस्व	दीर्घ, ओ–आओ
तृतीया	ए	हि हिं
चतुर्थी	ए	ण, णं
पंचमी	ए, हिंतो	ओ, सुंतो
षष्ठी	ए	ण, णं
सप्तमी	ए	सु, सुं
संबोधन	ह्रस्व	दीर्घ

आकारांत स्त्रीलिंग 'माला' शब्द के रूप

	एकवचन	**बहुवचन**
प्रथमा	माला	माला, मालाओ
द्वितीया	मालं	माला, मालाओ

तृतीया	मालाए	मालाहि, मालाहिं
चतुर्थी	मालाए	मालाण, मालाणं
पंचमी	मालाए, मालाहिंतो	मालाओ, मालासुंतो
षष्ठी	मालाए	मालाण, मालाणं
सप्तमी	मालाए	मालासु, मालासुं
सम्बोधन	माल!	माला!

संकेत – 'माला' शब्द की तरह बाला, सरिआ, कण्णा, दिसा, गिरा आदि के रूप चलेंगे।

पहचानिए और शब्दों की विभक्तियाँ बतलाइए –

मालाए, मालाओ, माल!, मालाहि

ईकारांत स्त्रीलिंग के प्रतीक प्रत्यय

	एकवचन	**बहुवचन**
प्रथमा	प्रत्यय लोप	लुक्–दीर्घ ओ
द्वितीया	(–) अनुस्वार दीर्घ का ह्रस्व	लुक्–दीर्घ ओ
तृतीया	ए	हि हिं
चतुर्थी	ए	ण णं
पंचमी	ए, ओ	हिंतो, सुंतो
षष्ठी	ए	ण णं
सप्तमी	ए	सु सुं
सम्बोधन	लुक्, ह्रस्व	दीर्घ

ईकारांत स्त्रीलिंग 'इत्थी' शब्द के रूप

	एकवचन	**बहुवचन**
प्रथमा	इत्थी	इत्थी, इत्थीओ
द्वितीया	इत्थिं	इत्थी, इत्थीओ
तृतीया	इत्थीए	इत्थीहि, इत्थीहि
चतुर्थी	इत्थीए	इत्थीण, इत्थीणं
पंचमी	इत्थीए, इत्थीओ	इत्थीहिंतो, इत्थीसुंतो
षष्ठी	इत्थीए	इत्थीण, इत्थीणं
सप्तमी	इत्थीए	इत्थीसु, इत्थीसुं
सम्बोधन	इत्थि!	इत्थी! इत्थीओ!

संकेत – इत्थी शब्द की तरह साडी, दासी, जुवई, कुमारी, तरुणी आदि के रूप चलेंगे।

पहचानिए और शब्दों की विभक्तियाँ बतलाइए –

इत्थिं, इत्थीहि, इत्थीसुंतो, इत्थीए

उकारांत स्त्रीलिंग के प्रतीक प्रत्यय

	एकवचन	**बहुवचन**
प्रथमा	लुक् – दीर्घ	लुक् – दीर्घ, ओ
द्वितीया	(–) अनुस्वार	लुक् – दीर्घ, ओ
तृतीया	ए	हि हिं
चतुर्थी	ए	ण णं
पंचमी	ए, ओ	हिंतो, सुंतो
षष्ठी	ए	ण णं
सप्तमी	ए	सु सुं
सम्बोधन	ह्रस्व	दीर्घ

उकारांत स्त्रीलिंग 'धेणु' शब्द के रूप

	एकवचन	**बहुवचन**
प्रथमा	धेणू	धेणू, धेणूओ
द्वितीया	धेणुं	धेणू, धेणूओ
तृतीया	धेणूए	धेणूहि, धेणूहिं
चतुर्थी	धेणूए	धेणूण, धेणूणं
पंचमी	धेणूए, धेणूओ	धेणूहिंतो, धेणूसिंतो
षष्ठी	धेणूए	धेणूण, धेणूणं
सप्तमी	धेणूए	धेणूसु, धेणूसुं
सम्बोधन	धेणु!	धेणू!

संकेत – धेणु शब्द की तरह विज्जु, चंचु, गड, रज्जु आदि के रूप बनेंगे।

पहचानिए और विभक्तियाँ बतलाइए –

धेणुं, धेणूए, धेणूसु, धेणूसुंतो

अकारांत नपुंसकलिंग प्रतीक प्रत्यय

	एकवचन	**बहुवचन**
प्रथमा	(–)	इ इं णि होने पर दीर्घ
द्वितीया	(–)	इ इं णि होने पर दीर्घ
तृतीया	ण–एण	हि–एहि, हिं–एहिं
चतुर्थी	स्स	ण णं

पंचमी	ओ	ओ हिंतो सुंतो
षष्ठी	स्स	ण णं
सप्तमी	ए म्मि	सु सुं

अकारांत नपुंसकलिंग 'फल' शब्द के रूप

	एकवचन	**बहुवचन**
प्रथमा	फलं	फलाइ, फलाइं, फलाणि
द्वितीया	फलं	फलाइ, फलाइं, फलाणि
तृतीया	फलेण	फलेहि, फलेहिं
चतुर्थी	फलस्स	फलाण, फलाणं
पंचमी	फलाओ	फलाओ, फलाहिंतो, फलासुंतो
षष्ठी	फलस्स	फलाण, फलाणं
सप्तमी	फले, फलम्मि	फलेसु, फलेसुं

संकेत – फल शब्द की तरह पुप्फ, कमल, धण, कम्म, मित, सुह, दुह आदि के रूप चलेंगे।

पहचानिए और विभक्तियाँ बतलाइए –

फलं, फलाणि, फलाओ, फलाण, फलेसु

इकारांत नपुंसकलिंग प्रतीक प्रत्यय

	एकवचन	**बहुवचन**
प्रथमा	(–)	इ इं णि होने पर दीर्घ
द्वितीया		इ इं णि होने पर दीर्घ
तृतीया	णा	हि हिं होने पर दीर्घ
चतुर्थी	स्स णो	ण णं होने पर दीर्घ
पंचमी	ओ हिंतो होने पर दीर्घ	ओ सुंतो होने पर दीर्घ
षष्ठी	स्स णो	ण णं होने पर दीर्घ
सप्तमी	म्मि	सु सुं होने पर दीर्घ

इकारांत नपुंसकलिंग 'वारि' शब्द रूप

	एकवचन	**बहुवचन**
प्रथमा	वारिं	वाराइ, वाराइं, वारीणि
द्वितीया	वारिं	वाराइ, वाराइं, वारीणि
तृतीया	वारिणा	वारीहि, वारीहिं
चतुर्थी	वारिस्स वारिणो	वारीण वारीणं
पंचमी	वारीओ वारीहिंतो	वारीओ वारीसुंतो

षष्ठी	वारिस्स	वारीण, वारीणं
सप्तमी	वारिम्मि	वारीसु, वारीसुं

संकेत – वारि की तरह दहि, अक्खि, अट्ठि आदि के रूप चलेंगे।

पहचानिए और विभक्तियाँ बतलाइए –

वारिं, वारीइं, वारिम्मि, वारीणं

उकारांत नपुंसकलिंग 'वत्थु' शब्द

	एकवचन	**बहुवचन**
प्रथमा	वत्थुं	वत्थूइ, वत्थूइं, वत्थूणि
द्वितीया	वत्थुं	वत्थूइ, वत्थूइं, वत्थूणि
तृतीया	वत्थुणा	वत्थूहि वत्थूहिं
चतुर्थी	वत्थुस्स वत्थुणो	वत्थूण वत्थूणं
पंचमी	वत्थूओ वत्थूहिंतो	वत्थूओ वत्थूसुंतो
सप्तमी	वत्थुम्मि	वत्थूसु, वत्थूसुं

संकेत – वत्थु शब्द की तरह महु, अंसु आदि के रूप चलेंगे।

अकारांत पुंलिंग 'पुरिस' शब्द

	एकवचन	**बहुवचन**
प्रथमा	पुरिसो	पुरिसा
द्वितीया	पुरिसं	पुरिसा, पुरिसे
तृतीया	पुरिसेण, पुरिसेणं	पुरिसेहि, पुरिसेहिं
चतुर्थी	पुरिसस्स	पुरिसाण, पुरिसाणं
पंचमी	पुरिसत्तो, परिसाओ	पुरिस्सो, पुरिसाओ, पुरिसाहिंतो, पुरिसासुंतो
षष्ठी	परिसहस	पुरिसाण, पुरिसाणं
सप्तमी	पुरिसे, पुरिसम्मि	पुरिसेसु, परिसेसुं
सम्बोधन	पुरिस! पुरिसो!	परिसा!

संकेत – 'पुरिस' की तरह णिव, सीस, जीव, बुह आदि के रूप चलेंगे।

अकारांत पुंलिंग 'णर' शब्द

	एकवचन	**बहुवचन**
प्रथमा	णरो	णरा
द्वितीया	णरं	णरा, णरे
तृतीया	णरेण, णरेणं	णरेहि, णरेहिं
चतुर्थी	णरस्स	णराण, णराणं

पंचमी	णरत्तो, णराओ	णरत्तो, णराओ, णराहिंतो, णरासुंतो
षष्ठी	णरस्स	णराण, णराणं
सप्तमी	णरे, णरम्मि	णरेसु, णरेसुं
सम्बोधन	णर! णरो!	णरा!

संकेत – 'णर' की तरह छत, विमल, उसह, पास आदि के रूप चलेंगे।

इकारांत 'सुधि' शब्द के रूप

	एकवचन	**बहुवचन**
प्रथमा	सुधी	सुधी, सुधिणो
द्वितीया	सुधिं	सुधी, सुधिणो
तृतीया	सुधिणा	सुधीहि, सुधीहिं
चतुर्थी	सुधिस्स, सुधिणो	सुधीण, सुधीणं
पंचमी	सुधित्तो, सुधीओ, सुधिणो	सुधित्तो, सुधीओ, सुधीहिंतो, सुधीसुंतो
षष्ठी	सुधिस्स, सुधिणो	सुधीण, सुधीणं
सप्तमी	सुधिम्मि	सुधीसु, सुधीसुं
सम्बोधन	सुधि!	सुधी!

संकेत – 'सुधि' की तरह कवि, करि, हरि आदि के रूप चलेंगे।

– सुधि में या अन्य इकारांत शब्द में (–) अनुस्वार होने पर सुधिं, दीर्घ ईकारांत केवली या वाणी शब्द होने पर दीर्घ का ह्रस्व हो जाता है। केवली (–) = केवलिं, वाणी +(–) वाणिं।

इकारांत पुंलिंग 'कवि' शब्द

	एकवचन	**बहुवचन**
प्रथमा	कवि–दीर्घ–कवी	कवि–दीर्घ कवी,
कवि+णो=कविणो		
द्वितीया	कविं	कवी, कविणो
तृतीया	कविणा	कवीहि, कवीहिं
चतुर्थी	कविस्स, कविणो	कवीण, कवीणं
पंचमी	कवित्तो, कवीओ, कविणो	कवित्तो, कवीओ, कवीहिंतो, कवीसुंतो
षष्ठी	कविस्स	कवीण, कवीणं
सप्तमी	कविम्मि	कवीसु, कवीसुं
सम्बोधन	कवि!	कवी!

संकेत – णो, णा, स्स, म्मि, तो होने पर दीर्घ नहीं होता है।

– संयोगी स्स, म्मि, तो प्रत्यय है, जिन्हें संयुक्त व्यंजन कहते हैं।

– स्स, म्मि, तो संयुक्त हैं, इनके होने पर दीर्घ ईकारांत केवली, णाणी के दीर्घ 'ई' का ह्रस्व 'इ' हो जाता है। यथा, केवली+स्स = केवलिस्स।

– केवली+तो = केवलितो।

– केवली+म्मि = केवलिम्मि।

उकारांत पुंलिंग 'साहु' शब्द

	एकवचन	**बहुवचन**
प्रथमा	साहू	साहू, साहुणो
द्वितीया	साहुं	साहू, साहुणो
तृतीया	साहुणा	साहूहि, साहूहिं
चतुर्थी	साहुस्स, साहुणो	साहूण, साहूणं
पंचमी	साहुतो, साहूओ	साहुतो, साहूओ, साहूहिंतो, साहूसुंतो
षष्ठी	साहुस्स, साहुणो	साहुण, साहूणं
सप्तमी	साहुम्मि	साहुसू, साहूसुं
सम्बोधन	साहु!	साहू!

संकेत – ण, णं (चतुर्थी/षष्ठी बहुवचन) हि हिं (तृतीया बहुवचन)।

– ओ हिंतो/सुंतो (पंचमी बहुवचन) ओ (पंचमी एकवचन)।

– सु, सुं सप्तमी बहुवचन के प्रत्यय होने पर दीर्घ हो जाता है।

उकारांत पुंलिंग 'गुरु' शब्द

	एकवचन	**बहुवचन**
प्रथमा	गुरु	गुरु, गुरुणो
द्वितीया	गुरुं	गुरु, गुरुणो
तृतीया	गुरुणा	गुरुहि, गुरुहिं
चतुर्थी	गुरुस्स, गुरुणो	गुरुण, गुरुणं
पंचमी	गुरुतो, गुरुओ, गुरुणो	गुरुतो, गुरुओ, गुरुहिंतो, गुरुसुंतो
षष्ठी	गुरुस्स, गुरुणो	गुरुण, गुरुणं
सप्तमी	गुरुम्मि	गुरुसु, गुरुसुं
सम्बोधन	गुरु!	गुरु!

आकारांत स्त्रींलिंग 'सरिआ' शब्द

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	सरिआ	सरिआ, सरिआओ
द्वितीया	सरिअं	सरिआ, सरिआओ
तृतीया	सरिआइ, सरिआए	सरिआहि, सरिआहिं
चतुर्थी	सरिआइ, सरिआए	सरिआण, सरिआणं
पंचमी	सरिआइ, सरिआए	सरिआओ, सरिआहिंतो, सरिआसुंतो
षष्ठी	सरिआइ, सरिआए	सरिआण, सरिआणं
सप्तमी	सरिआइ, सरिआए	सरिआसु, सरिआसुं
सम्बोधन	सरिआ!	सरिआओ!

संकेत – सरिआ की तरह भारिया, दिरसा, गिरा आदि के रूप बनेंगे।

आकारांत स्त्रींलिंग 'णिसा' शब्द

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	णिसा	णिसा, णिसाओ
द्वितीया	णिसं	णिसा, णिसाओ
तृतीया	णिसाइ, णिसाए	णिसाहि, णिसाहिं
चतुर्थी	णिसाइ, णिसाए	णिसाण, णिसाणं
पंचमी	णिसाइ, णिसाए	णिसाओ, णिसाहिंतो, णिसासुंतो
षष्ठी	णिसाइ, णिसाए	णिसाण, णिसाणं
सप्तमी	णिसाइ, णिसाए	णिसासु, णिसासुं
सम्बोधन	णिसा!	णिसाओ!

ईकारांत स्त्रींलिंग 'दासी' शब्द

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	दासी	दासी, दासीओ
द्वितीया	दासिं	दासी, दासीओ
तृतीया	दासीइ, दासीए	दासीहि, दासीहिं
चतुर्थी	दासीइ, दासीए	दासीण, दासीणं
पंचमी	दासीइ, दासीए	दासीओ, दासीहिंतो, दासीसुंतो
षष्ठी	दासीइ, दासीए	दासीण, दासीणं
सप्तमी	दासीइ, दासीए	दासीसु, दासीसुं
सम्बोधन	दासि!	दासी! दासीओ!

संकेत – दासी की तरह लच्छी, इत्थी, तरुणी आदि के रूप चलेंगे।

ईकारांत स्त्रींलिंग 'बहिणी' शब्द

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	बहिणी	बहिणी, बहिणीओ[1]
द्वितीया	बहिणि	बहिणी, बहिणीओ
तृतीया	बहिणीइ, बहिणीए[2]	बहिणीहि, बहिणीहिं
चतुर्थी	बहिणीइ, इहिणीए	बहिणीण, बहिणीणं
पंचमी	बहिणीइ, बहिणीए	बहिणीओ, बहिणीहिंतो, बहिणीसुंतो
षष्ठी	बहिणीइ, बहिणीए	बहिणीण, बहिणीणं
सप्तमी	बहिणीइ, बहिणीए	बहिणीसु, बहिणीसुं
सम्बोधन	बहिणि!	बहिणीओ!

संकेत – 1. स्त्रियामुदोतौ वा (हे.प्रा.व्या. 3/27) सूत्र से स्त्रीलिंग शब्दों के प्रथमा बहुवचन और द्वितीया बहुवचन में ओ और 'उ' प्रत्यय होते हैं। यथा–बहिणी+ओ=बहिणीओ, बहिणी+उ= बहिणीउ।

2. टा–ङस्–ङेरदादिदेद्वा तु ङसेः (हे. प्रा. व्या. 3/29) से स्त्रीलिंगवाची शब्दों में अ, आ, इ, ए प्रत्यय होते हैं।

अकारांत नपुंसकलिंग 'णयण' शब्द

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	णयणं	णयणाइ, णयणाइं, णयणाणि
द्वितीया	णयणं	णयणाइ, णयणाइं, णयणाणि
तृतीया	णयणेण, णयणेणं	णयणेहि, णयणेहिं
चतुर्थी	णयणस्स	णयणाण, णयणाणं
पंचमी	णयणतो, णयणाओ	णयणतो, णयणाओ, णयणाहिंतो, णयणासुंतो
षष्ठी	णयणस्स	णयणाण, णयणाणं
सप्तमी	णयणे, णयणम्मि	णयणेसु, णयणेसुं

संकेत – 1. जस्–शस्–इ इं णयः सप्राग्दीर्घः (हे. 3/26) जस् (प्रथमा बहुवचन) और शस् (द्वितीया बहुवचन) के प्रत्यय के स्थान पर इ, इं और णि प्रत्यय होते हैं और इसी सूत्र से दीर्घ हो जाता है। अतः णयण+इ=णयणाइ, णयण+इं= णयणाइं, णयण+णि=णयणाणि।

अकारांत नपुंसकलिंग 'धण' शब्द

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	धणं	धणाइ, धणाइं, धणाणि
द्वितीया	धणं	धणाइ, धणाइं, धणाणि
तृतीया	धणेण, धणेणं	धणेहि, धणेहिं
चतुर्थी	धणस्स	धणाण, धणाणं

पंचमी	धणतो, धणाओ	धणतो, धणाओ, धणाहिंतो, धणासुंतो
षष्ठी	धणस्स	धणाण, धणाणं
सप्तमी	धणे, धणम्मि	धणेसु, धणेसुं
सम्बोधन	धण![1]	धणाइ!

संकेत – 1. नामन्त्र्यात् सौ मः (हे.प्रा.व्या. 3/37) सूत्र से आमंत्रण (संबोधन) में अनुस्वार (–) नहीं होता है।

इकारांत नपुंसकलिंग 'दहि' शब्द

	एकवचन	**बहुवचन**
प्रथमा	दहिं	दहीइ, दहीइं, दहीणि
द्वितीया	दहिं	दहीइ, दहीइं, दहीणि
तृतीया	दहिणा	दहीहि, दहीहिं
चतुर्थी	दहिस्स, दहिणो	दहीण, दहीणं
पंचमी	दहितो, दहीसो, दहिणो	दहितो, दहीओ, दहीहिंतो, दहीसुंतो
षष्ठी	दहिस्स, दहिणो	दहीण, दहीणं
सप्तमी	दहिम्मि	दहीसु, दहीसुं
सम्बोधन	दहि!	दहि!

उकारांत नपुंसकलिंग 'महु' शब्द

	एकवचन	**बहुवचन**
प्रथमा	महुं	महुइ, महूइं, महूणि
द्वितीया	महुं	महूइ, महूइं, महूणि
तृतीया	महुणा	महूहि, महूहिं
चतुर्थी	महुस्स, महुणो	महूण, महूणं
पंचमी	महुतो, महूओ, महुणो	महुतो, महूओ, महूहिंतो, महूसुंतो
षष्ठी	महुस्स, महुणो	महूण, महूणं
सप्तमी	महुम्मि	महूसु, महूसुं
सम्बोधन	महु!	महु!

संकेत – महु की तरह चंचु के रूप चलेंगे।

अभ्यास

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. अकारांत पुंलिंग शब्द इनमें से कौन ?

(क) दहि (ख) महु
(ग) णर (घ) सुधि ( )

2. इकारांत पुंलिंग शब्द इनमें से कौन ?

(क) मुणि (ख) भाणु
(ग) णर (घ) जंबू ( )

3. उकारांत पुंलिंग शब्द इनमें से कौन ?

(क) कवि (ख) खंध
(ग) सरिआ (घ) साहु ( )

4. आकारांत स्त्रीलिंग शब्द इनमें से कौन ?

(क) सासू (ख) दासी
(ग) कण्णा (घ) धेणु ( )

5. उकारांत स्त्रीलिंग शब्द इनमें से कौन ?

(क) धण (ख) धेणु
(ग) दासी (घ) णिसा ( )

6. ईकारांत स्त्रीलिंग शब्द इनमें से कौन ?

(क) विज्जु (ख) जुवई
(ग) बहू (घ) माला ( )

7. अकारांत नपुंसकलिंग शब्द इनमें से कौन ?

(क) णयर (ख) दहि
(ग) महु (घ) वाया ( )

वस्तुनिष्ठ प्रश्न की उत्तर माला

1–(ग), 2–(क), 3–(घ), 4–(ग), 5–(ख), 6–(ख), 7–(क)

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. प्राकृत में कितने वचन होते हैं ?
2. चतुर्थी का रूप कौनसा है ? अकारांत में।
3. तृतीया एकवचन में 'दहि' का क्या रूप बनेगा ?
4. पंचमी बहुवचन में 'माला' का क्या रूप बनेगा ?
5. स्त्रीलिंग में तृतीया से सप्तमी एकवचन में कौनसे रूप बनेंगे ?
6. नपुंसकलिंग के प्रथमा में कौनसा रूप बनेगा ?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. इकारांत पुंलिंग के पंचमी के रूप लिखिए।
2. सीस पुंलिंग के सभी रूप लिखिए।
3. बाला स्त्रीलिंग के तृतीया से सप्तमी तक के सभी रूप लिखिए।

4. नपुंसकलिंग में प्रथमा एवं द्वितीया को छोड़कर शेष तृतीया से सम्बोधन तक के रूप किस लिंग की तरह रूप बनेंगे ?

निम्नांकित शब्दों में कौनसी विभक्ति है ?

1. बालाण ( )
2. मालासुंतो ( )
3. दहीइ ( )
4. मुणीसु ( )
5. णयरस्स ( )
6. णिसाहि ( )

विभक्तियों का सही निर्देश कीजिए –

(क) तृतीया	(1) दहीइ
(ख) प्रथमा बहुवचन	(2) महुस्स
(ग) सप्तमी	(3) मुणिणा
(घ) चतुर्थी	(4) घणम्मि

शब्दों की उत्तरमाला

(क)–(3), (ख)–(1), (ग)–(4), (घ)–(2)

प्राकृत क्रिया प्रकरण

– वर्तमान काल (लट्लकार)

– भविष्यत् काल (लृट्लकार)

– विधि–आज्ञार्थक

– भूतकाल (लिट्लकार)

वर्तमानकाल प्रतीक प्रत्यय

	एकवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	इ	न्ति > अंति
मध्यम पुरुष	सि	इत्था
उत्तम पुरुष	मि > आमि	मो > आमो

वर्तमानकाल 'भण' क्रिया (कहना)

प्रथम पुरुष	भणइ	भणंति
मध्यम पुरुष	भणसि	भणित्था
उत्तम पुरुष	भणामि	भणामो

संकेत – गच्छ (To go), पिव (To drink), भुंज (To eat), हस (To laugh), पढ़ (To read) इत्यादि क्रियाओं के रूप भण की तरह चलेंगे।

पहचानिए और क्रिया का पुरुष एवं वचन बतलाइए –

भणामि, भणसि, भणइ

भविष्यत्काल के प्रतीक प्रत्यय

	एकवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	स्स+इ	स्स+न्ति, अंति
मध्यम पुरुष	स्स+सि	स्स+इत्था
उत्तम पुरुष	स्स+मि	स्स+मो

भविष्यत्काल की पहचान 'स्स' 'पढ' के रूप

प्रथम पुरुष	पढिस्सइ	पढिस्संति
मध्यम पुरुष	पढिस्ससि	पढिस्सित्था
उत्तम पुरुष	पढिस्सामि	पढिस्सामो

संकेत – इच्छ (To wish), सुण (To hear), भुंज (To eat), णच्च (To dance), पास (To see) इत्यादि के रूप चलेंगे।

पहचानिए और क्रिया का पुरुष एवं वचन बतलाइए –

पढिस्संति पढिस्सित्था पढिस्सामो

विधि/आज्ञार्थक प्रतीक प्रत्यय

	एकवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	उ	न्तु > अंतु
मध्यम पुरुष	हि	ह
उत्तम पुरुष	मु	मो

विधि/आज्ञार्थक 'हस' (हसना) के रूप

	एकवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	हसउ	हसंतु
मध्यम पुरुष	हसहि	हसह
उत्तम पुरुष	हसमु	हसमो

संकेत – हस की तरह चिंत (To think), चल (To move), भम (To roam), सेव (To serve), कील (To play) इत्यादि के रूप चलेंगे।

पहचानिए और क्रिया का पुरुष एवं वचन बतलाइए –

हसउ हसमु हसह

भूतकाल के प्रतीक प्रत्यय

	एकवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	ईअ	ईअ
मध्यम पुरुष	ईअ	ईअ
उत्तम पुरुष	ईअ	ईअ

भूतकाल 'णम' (नमन करना) के रूप

	एकवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	णमीअ	णमीअ
मध्यम पुरुष	णमीअ	णमीअ
उत्तम पुरुष	णमीअ	णमीअ

'दा' देना धातु के रूप

वर्तमान काल

	एकवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	देइ	देंति
मध्यम पुरुष	देसि	देइत्था
उत्तम पुरुष	देमि	देमो

भविष्यत् काल 'हि'

	एकवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	दाहिइ	दाहिति
मध्यम पुरुष	दाहिसि	दाहित्था
उत्तम पुरुष	दाहिमि	दाहिमो

विधि/आज्ञार्थक 'दा' धातु

	एकवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	देउ	देतु
मध्यम पुरुष	देहि	देह
उत्तम पुरुष	देमु	देमो

भूतकाल 'दा' धातु

	एकवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	दासी, दाही, दाहीअ	दासी, दाही, दाहीअ
मध्यम पुरुष	दासी, दाही, दाहीअ	दासी, दाही, दाहीअ
उत्तम पुरुष	दासी, दाही, दाहीअ	दासी, दाही, दाहीअ

संकेत – दा की तरह णे, हो आदि के रूप चलेंगे।

क्रिया रूप

वर्तमान काल[1] – जाण (जानना)

	एकवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	जाणइ	जाणंति
मध्यम पुरुष	जाणसि	जाणित्था
उत्तम पुरुष	जाणामि	जाणामो

भविष्यत्काल – जाण

	एकवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	जाणिस्सइ	जाणिस्संति
मध्यम पुरुष	जाणिस्ससि	जाणिस्सित्था
उत्तम पुरुष	जाणिस्सामि	जाणिस्सामो

संकेत – 1. त्यादिनामाद्यत्रयस्याधस्येचे–चौ (हे.प्रा.व्या. 3/139) द्वितीयस्य सि से (हे.प्रा.व्या. 3/140), तृतीयस्य मिः (हे.प्रा. व्या. 3/141), बहुष्वाद्यस्य न्ति न्ते इरे (हे.प्रा.व्या. 3/142), मध्यस्येत्था हचौ (हे.प्रा.व्या. 3/143), तृतीयस्य मो मु माः (हे.प्रा.व्या. 3/144)।

विधि/आज्ञा[1] – जाण

	एकवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	जाणउ	जाणंतु

मध्यम पुरुष	जाणहि	जाणह
उत्तम पुरुष	जाणमु	जाणमो

संकेत – 1. दु सु मु अिवध्यादिष्वेकस्मित्रयाणाम् (हे.प्रा.व्या. 3/173) सो र्हि र्वा (हे.प्रा.व्या. 3/174), बहुसु न्तु हमो (हे.प्रा.व्या. 3/176)।

भूतकाल[2] – 'जाण'

	एकवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	जाणीअ	जाणीअ
मध्यम पुरुष	जाणीअ	जाणीअ
उत्तम पुरुष	जाणीअ	जाणीअ

संकेत – 2. व्यंजनादीअः (हे.प्रा.व्या. 3/163) भूतकाल में जाण, भण, हस, लिह आदि में ईअ प्रत्यय होता है।

– भूतकाल में का, ठा, णे जैसी क्रियाओं में सी ही और हीअ प्रत्यय होंगे। कासी, काही, काहीअ। ठासी, ठाही, ठाहीअ। णेसी, णेही, णेहीअ।

– तीनों पुरुषों के दोनों वचनों में समान रूप चलते हैं।

	एकवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	सो कासी	ते कासी
मध्यम पुरुष	तुम कासी	तुम्हे कासी
उत्तम पुरुष	अहं कासी	अम्हे कासी

सो कासी – उसने किया। ते कासी – उन्होंने किया।

तुम कासी – तूने किया। तुम्हे कासी – तुम/तुम दोनों/तुम सबने किया।

अहं कासी – मैंने किया। अम्हे कासी – हम/हम सबने किया।

– का – करना। ठा – ठहरना, रहना। णे – ले जाना।

– सी ही हीअ भूतार्थस्य (हे.प्रा.व्या. 3/162)

– अस – होना – अस्रिूत – का आति/अहेसि होगा। तेनास्तेराष्यहेसी (हे.प्रा.व्या. 3/164)

सो असि/अहेसि	ते आसि/अहेसि
तुम आसि/अहेसि	तुम्हे आसि/अहेसि
अहं आसि/अहेसि	आहे आसि/अहेसि

वर्तमानकाल 'गच्छ' – जाना, गमन करना

	एकवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	गच्छइ	गच्छंति
मध्यम पुरुष	गच्छसि	गच्छित्था, गच्छह
उत्तम पुरुष	गच्छामि	गच्छामो

भविष्यत्काल1 'गच्छ'

	एकवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	गच्छिस्सइ	गच्छिस्संति
मध्यम पुरुष	गच्छिस्ससि	गच्छिस्सित्था
उत्तम पुरुष	गच्छिस्सामि	गच्छिस्सामो

संकेत – 1. भविष्यत्काल में 'स्स' और 'हि' भी होता है। भविष्यति हिरादिः (हे.प्रा.व्या. 3/166)

	एकवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	गच्छिहिइ	गच्छिहिंति
मध्यम पुरुष	गच्छिहिसि	गच्छिहित्था, गच्छिहिह
उत्तम पुरुष	गच्छिहिमि	गच्छिहिमो

विधि/आज्ञा 'गच्छ'

	एकवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	गच्छउ	गच्छंतु
मध्यम पुरुष	गच्छहि	गच्छह
उत्तम पुरुष	गच्छमु	गच्छमो

भूतकाल 'गच्छ'

	एकवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	गच्छीअ	गच्छीअ
मध्यम पुरुष	गच्छीअ	गच्छीअ
उत्तम पुरुष	गच्छीअ	गच्छीअ

संकेत – भण – कहना। जाण – जानना। इच्छ – इच्छा करना। पिव – पीना, पान करना। खेल – खेलना। हस – हसना। पढ़ – पढ़ना। सुण – सुनना। णच्च – नाचना। दा – देना। ठो – ले जाना। हो/हव – होना।

क्रियाएँ (VERBS)

पास	पश्य	देखना	To See
घाव	घाव	दौड़ना	To Run
णम	नम्	नमन करना	To Salute
चल	चल्	चलना	To Walk
चिंत	चिन्त्	चिंतन करना/सोचना	To Think
भम	भ्रम्	घूमना	To Roam
जय	जी	जीतना	To Win

सेव	सेव्	सेवा करना	To Serve
भण		कहना	To Told
पेस		भेजना	To Send
कंद	क्रंद्	रोना / चिल्लाना	To Cry
कीण	क्रीड़ा	खेलना	To Play
पाल	पांल्	पालना / रक्षा करना	To Protect
सीख		सीखना	
गज्ज		गरजना	
पस्स	दृश्	देखना	To मम
कड्ढ		निकालना	
छिन्न		अलग करना	
दह	दह्	जलना	To Burn
सोह		चमकना	To Shine
पड	पठ्	गिरना	To Fall
उट्ठ		उठना	To Stand
जाण		जानना	To Know
इच्छ	इष्	इच्छा करना	To Wish
पिव		पीना	To Drink
गच्छ	गम्	जाना	To Go
खेल		खेलना	To Play
हस	हस्	हंसना	To Laugh
पढ	पठ्	पढ़ना	To Read
लेह		लिखना	To Write
सुण	श्रु	सुनना	To Hear
भुंज			
णच्च			
दा			
णे			
हो			
अस			

ग. कृदंत

वर्तमानकालिक कृदंत	न्त, माण
सम्बन्ध कृदंत	ऊण
हेत्वर्थ कृदंत	तु > उ
विधि कृदंत	अव्व

वर्तमानकालिक कृदंत – न्त माण प्रत्यय (होता हुआ हुए) के तीनों लिंगों में प्रयुक्त होंगे और इनके सभी विभक्तियों में रूप चलेंगे।

– न्त – भण + न्त + ओ = भणंतो
बालो भणंतो गच्छइ
बालक कहता हुआ जाता है।

– माण – हस + माण + ओ = हसमाणो – हंसता हुआ, हसमाणो बालो सोहइ = हँसता हुआ बालक अच्छा लगता है।

एकवचन एवं बहुवचन तथा सातों विभक्तियों में न्त, माण प्रत्यय लगने पर पुं. अकारांत बाल, स्त्रीलिंग आकारांत माला एवं अकारांत नपुंसकलिंग 'जल' आदि की तरह रूप चलेंगे।

	एकवचन	**बहुवचन**
प्रथमा	हसंतो	हसंता
द्वितीया	हसंत	हसंता, हसंते

सम्बन्ध कृदंत – ऊण – करके

यथा पढ + ऊण = पढिऊण = पढ़कर
बालो पढिऊण आगच्छइद।

हेत्वर्थ कृदंत – तुं > उं = के लिए
पढ + उं = पढिउं = पढ़ने के लिए
बालो पढिउं गच्छइ।

विधि कृदंत – अव्व – योग्य, चाहिए

पढ + अव्व = पढिअव्व – पढिअव्वं
पोत्थअं पढिअव्वं अत्थि = पुस्तक पढ़ने योग्य है।
पढ + अणीअ = पढणीअं = पोत्थअं पढणीअं अत्थि।

पहचानिए और कृदंत नाम बतलाइए –

– णच्चंता सेवमाणो जयउं चिंतअव्वं।

– कृदंत बनाएं।

– वर्तमान कृदंत का प्रयोग कीजिए।

– विधि कृदंत का अव्वं किसी क्रिया में प्रयोग कीजिए।

– सम्बन्ध कृदंत का ऊण प्रत्यय लगाकर वाक्य बनाइए।

विशेषण ज्ञान – ऐसे प्रयोग जिनसे संज्ञा, सर्वनाम की विशेषता प्रकट हो।

– **अ का प्रयोग –** इस अ प्रत्यय के जुड़ने से शब्द के प्रथम स्वर की वृद्धि होती है।

अ > आ इ > ई इ ई > ए उ ऊ > ओ

राहवो – रहुस्स पुत्रो – रघु का पुत्र।
णाहेय – णाहिस्स पुत्रो। पंडवो – पंडुस्स पुत्रो।
वसुदेवस्स पुत्रो – वासुदेवो।

– त – गुरु + त = गुरुत। लहु + त = लहुत (लघुता)

– तण – सिसु + तण = सिसुतण (शिशुता)
सुह + तण = सुहतण (शुभता)

– इल्ल – बाला या युक्त अर्थ में इल्ल प्रत्यय होता है। यथा– जस + इल्ल = जसिल्ल (यशस्वान्),
बुद्धिल्ल – बुद्धि+इल्ल (बुद्धिमान)
विज्जिल्ल – विश्ना+इल्ल (विद्यावान)
गुण+इल्ल – गुणिल्ल – (गुणवान्)।

पहचानिए और बतलाइए –

– महुरिल्ल कासवो जसत सुहत समतण

कर्मणि प्रयोग ज्ञान –

वाच्य–परिवर्तन के तीन भेद हैं –

(i) **कर्तृवाच्य –** जिसमें कर्त्ता के पुरुष एवं वचन के अनुसार क्रिया का पुरुष और वचन होता है। यथा – वीरो गच्छइ।

– वीरो – प्रथमा एकवचन और गच्छइ – प्रथम पुरुष एकवचन की है।

(ii) **कर्मवाच्य –** कर्ता में तृतीया, कर्म में प्रथमा और क्रिया के पुरुष एवं वचन कर्म के पुरुष और वचन के अनुकूल होते हैं, वहां कर्मवाच्य होता है। यथा – महावीरेणं समोधम्मो णिछिहो।

(iii) **भाववाच्य –** जहां क्रिया के अर्थ में प्रत्यय होता है, वहां भाववाच्य होता है। यथा –

छतो हसइ (कर्तृवाच्य)

कर्मवाच्य क्रियाएँ

कर/कुण – करना – करइ/कुणइ – कुणए

गच्छ – जाना – गच्छइ – गच्छए

पिव – पीना – पिवइ – पिवए

मुंच – छोड़ना – मुंचइ – मुंचए

पच – पचाना – पचइ – पचए

कील – खेलना – कीलइ – कीलए

पस्स – देखना – पस्सइ – पस्सए

जाण – जानना – जाणइ – जाणए

छतेण हसिज्जइ (कर्मवाच्य)

भाववाच्य क्रियाएँ

जण – पैदा होना – जणए

णच्च – नाचना – णच्चए

वस – रहना – वसए

सय – सोना – सयए

चिट्ठ – बैठना – चिट्ठए

भय – डरना – भयए

हव/हो – होना – हवइ – हवए

मर – मरना – मरए

अभ्यास

कृदंत – वर्तमान कृदंत

पुंलिंग – न्त, माण – पास+त – पासंतो।
पास+माण+ओ – पासमाणो।
चिंत+न्त – चिंतंतो। चिंत+माण – चिंतमाणो।
जय+न्त – जयंतो। जय+माण – जयमाणो।
सीख+न्त – सीखंतो। सीख+माण – सीखमाणो।

स्त्री. – दह+न्त+आ – दहंता। दहमाण+आ – दहमाणा। कडु+न्त+आ – कडुंता। कडु+माण+आ – कडुमाणा।
छिन्न+न्त+आ – छिन्नंता। छिन्न+माण+आ – छिन्नमाणा। सोह+न्त+आ – सोहंता। सोह+माण+आ – सोहमाणा।

नपुं. – चल+न्त+(–) चलंतं। चल+माण+(–) – चलमाणं। पड+न्त+(–) पडंतं। पड+माण+(–) – पडमाणं।
धाव+न्त+(–) धावंतं। धाव+माण+(–) – धावमाणं। भम+न्त+(–) भमंतं। भम+माण+(–) – भममाणं।

सम्बन्ध कृदंत – ऊण – करके

(1) दह + ऊण = दहिऊण – जलाकर।

(2) णम + ऊण = णमिऊण – नमनकर।

(3) पेस + ऊण = पेसिऊण – भेजकर।

(4) सेव + ऊण = सेविऊण – सेवन करना।

हेत्वर्थ कृदंत – उं

(1) चल + उं = चलिउं = चलने के लिए।

(2) कंद + उं = कंदिउं = रोने के लिए, चिल्लाने के लिए।

(3) पड + उं = पडिउं = गिरने के लिए।

(4) पास + उं = पासिउं = देखने के लिए।

विधि कृदंत – अव्वं

(1) भणि + अव्वं = भणिअव्वं = कहने योग्य।

(2) सुणि + अव्वं = सुणिअव्वं = सुनने योग्य।

(3) चल + अव्वं = चलिअव्वं = चलने योग्य।

(4) गज्ज + अव्वं = गज्जिअव्वं = गरजने योग्य।

'अ' प्रत्यय

(1) 'अ' प्रत्यय का प्रयोग भूतकाल या समाप्ति कार्य के लिए किया जाता है।

(2) इसमें कर्त्ता तृतीया में रखा जाता है। यथा – मए पोत्थआणि पढिआणि।

(3) यह विशेष्य के अनुसार होता है। विशेष्य पुं., स्त्रीलिंग या नपुंसकलिंग हो तो उसी के अनुसार 'अ' प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है।

(4) 'अ' प्रत्यय सदैव कर्मवाच्य में होता है।

पुंलिंग : गओ – गया। जयो – जीता। चिंत – चिंतिओ – सोचा गया। दह – दहिओ – जलाया गया। सेव + अ – सेविओ – सेवा किया गया। भण + अ – भणिओ = कहा गया।

स्त्रीं. : पेस+अ+आ – पेसिआ = भेजा ।
णच्च+अ+आ – णच्चिआ = नाचा।
लिह+अ+आ – लिहिआ = लिखा गया।

नपुं. : कील+अ+(–) कीलिअं – खेला गया।
पाल+अ+(–) पालिअं – पाला गया।
इच्छ+अ+(–) इच्छिअं – चाहा गया।

'अणीअ' प्रत्यय – चाहिए अर्थ में इसका प्रयोग होता है।

(1) इच्छ+अणीअ = इच्छणीअ = इच्छा करना चाहिए।

(2) कील+अणीअ = कीलणीअ = खेलना चाहिए।

(3) हस+अणीअ = हसणीअ = हसना चाहिए।

(4) पढ+अणीअ = पढणीअ = पढ़ना चाहिए।

'स्स' प्रत्यय – भविष्यत् काल में 'स्स' प्रत्यय होता है। इनमें न्त, माण, प्रत्यय जोड़े जाते हैं।

(1) चिंत+स्स+न्त = चिंतिस्संतो = सोचता होगा।

(2) पढ़+स्स+न्त = पढिस्संतो = पढ़ता होगा।

(3) हस+स्स+माण = हसिस्समाणो = हसता होगा।

(4) णच्च+स्स+माण = णच्चिस्समाणो = नाचता होगा।

कर्मणि प्रयोग –

(1) धातुओं में मुख्यतः तीन वाच्य होते हैं – कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य।

(2) भाववाच्य और कर्मवाच्य में मूल क्रियाओं के मध्य में 'इज्ज' प्रत्यय ईअ/ईअ विकरण भी जुड़ते हैं। यथा – हस+इज्ज+इ = हसिज्जइ। हस+ईअ+इ = हसीअइ।

क. वर्तमानकाल (लट् लकार)

कर्तृवाच्य	**कर्मवाच्य**
बालो पोत्थअं पढइ।	बालेण पोत्थअं पढिज्जइ।
सुरेसो णयरं गच्छइ।	सुरेसेण णयरं गच्छिज्जइ।
चंदणा महावीरं पस्सइ।	चंदणाए महावीरो परिसज्जइ।

ख. भविष्यत्काल (लृट् लकार)

बालो पोत्थअं पढिस्सइ।
बालेण पोत्थअं पढिस्सइ।

सुरेसो णयरं गच्छिस्सइ।
सुरेसेण णयरं गच्छिस्सइ।

चंदणा महावीरं परिसस्सइ।
चंदणाए महावीरो परिसस्सइ।

ग. विधि/आज्ञा

बालो पोत्थअं पढउ।
बालेण पोत्थअं पढिज्जउ।

सुरेसो णयरं गच्छउ।
सुरेसेण णयरं गच्छिज्जउ।

चंदणा महावीरं पस्सउ।
चंदणाए महावीरो परिसज्जउ।

घ. भूतकाल

बालो पोत्थअं पढीअ।
बालेण पोत्थअं पढिज्जीअ।

सुरेसो णयरं गच्छीअ।
सुरेसेण णयरं गच्छिज्जीअ।

चंदणा महावीरं पस्सीअ।
चंदणाए महावीरो परिसज्जीअ।

कर्तृवाच्य से भाववाच्य

क. वर्तमान काल

कर्तृवाच्य	**कर्मवाच्य**
बालो हसइ	बालेण हरिज्जइ।
सुरेसो हसइ	सुरेसेण हसिज्जइ।
चंदणा हसइ	चंदणाए हरिज्जइ।

ख. भविष्यत् काल

बालो हसिस्सइ	बालेण हसिस्सइ।
सुरेसो हसिस्सइ	सुरेसेण हसिस्सइ।
चंदणा हसिस्सइ	चंदणाए हसिस्सइ।

ग. विधि / आज्ञा

बालो हसउ	बालेण हसउ।
सुरेसो हसउ	सुरेसेण हसउ।
चंदणा हसउ	चंदणाए हसउ।

घ. भूतकाल

बालो हसीअ	बालेण हसिज्जीअ।
सुरेसो हसीअ	सुरेसेण हसिज्जीअ।
चंदणा हसीअ	चंदणा हसिज्जीअ।

संकेत – उक्त नियम एकवचन के हैं। इन्हें बहुवचन भी बनाया जा सकता है।

अभ्यास

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

(1) चिंतइ किस काल का रूप है ? ( )

(2) चिंतित्था किस काल का रूप है ? ( )

(3) पासीअ का काल बतलाइए। ( )

(4) दहिस्सामि का काल बतलाइए। ( )

(5) उट्ठंति का पुरुष बतलाइए। ( )

(6) धावसि का पुरुष बतलाइए। ( )

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(क) इसमें मध्यम पुरुष एकवचन कौनसा रूप है ?

(i) भणंति (ii) भणसि

(iii) कीणइ (iv) पालामि ( )

(ख) इसमें भविष्यत्काल का रूप कौन सा है ?

(i) गच्छि (ii) हसउ

(iii) सेविस्सइ (iv) णमंति ( )

(ग) विधि/आज्ञा इनमें से कौन हैं ?

(i) सोहइ (ii) चलंति

(iii) पेससि (iv) णच्चउ ( )

(घ) इसमें भूतकाल का कौनसा रूप है ?

(i) कंदीअ (ii) सीखउ

(iii) छिन्नइ (iv) पडिस्सामि ( )

वस्तुनिष्ठ की उत्तरमाला –

(क)–(ii), (ख) – (iii), (ग) – (iv), (घ) – (i)।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

(1) वर्तमान काल के रूप किसी एक धातु के लिखिए।

(2) भविष्यत् काल के मध्यम पुरुष के रूप किसी एक धातु के लिखिए।

(3) वर्तमानकाल के कृदन्त के प्रत्यय देकर पुंलिंग का प्रयोग दीजिए।

(4) विधि कृदंत का प्रत्यय लिखकर 'चल' में प्रयोग कीजिए।

(5) कर्तृवाच्य किसे कहते हैं ?

(6) कर्मवाच्य किसे कहते हैं ?

(7) भाववाच्य किसे कहते हैं ?

(8) संधि किसे कहते हैं ?

निम्न क्रियाओं के जोड़े बनाइए –

(i) हसिस्सइ	(i) वर्तमान काल
(ii) लिहउ	(ii) भूतकाल
(iii) गच्छीअ	(iii) भविष्यत्काल
(iv) भणइ	(iv) विधि

उत्तरमाला – (i) – iii, (ii) – iv, (iii) – ii, (iv) – i

संधि प्रयोग ज्ञान

वर्णों के निकट आने पर जो परिवर्तन होता है, उसे सन्धि कहते हैं। प्राकृत में मुख्यतः तीन प्रकार की संधियाँ होती हैं – (i) स्वर संधि (ii) व्यंजन संधि, और (iii) अव्यय संधि।

(i) स्वर संधि – दो समान स्वरों के मिलने से जो परिवर्तन होता है, वह स्वर संधि कहलाती है। (i) दीर्घ संधि, (ii) गुण संधि, (iii) ह्रस्व–दीर्घ संधि, (iv) संधि निषेध, और (v) स्वर लोप (लुक्) संधि, ये पांच भेद स्वर संधि के भेद हैं।

– **दीर्घ संधि –** सवर्ण दीर्घ संधि। यह समान स्वर होने पर होती है। यथा –

अ+अ = आ जीवाजीवो – जीव+अजीवो
उसहाजिओ – उसह+अजिओ
इ+इ = ई मुणीण मुणि + इण
उ+उ = ऊ, भाणु + उदयो – भाणूदयो

संधि पद का विग्रह – विरहाणल विरहारअ सुधीस

– **गुण संधि –** अवर्ण के पश्चात् उ या उ वर्ण हो तो गुण संधि होती है। यथा –

अ+इ = ए–बास + इसी = वासेसी
अ+ई = ए–दिण + ईस –दिणेस सुर + ईस = सुरेस आ+ई = ए – रमा+ईस – रमेस

अ+अ = ओ – गाम+उवरि – गामोवरि
कसाय + उदयो – कसायोदयो
आ+उ = ओ – रमा+उवचिअ = रमोवचिअ
सास+ऊ = ओ – सास+ऊसास = सासोसास

संधि पद का विग्रह कीजिए –

पुण्योदयो सुज्जोदयो दिणेसो जिणेसो महेसो

– **ह्रस्व–दीर्घ संधि –** समास पद में स्थित दीर्घ का ह्रस्व और ह्रस्व का दीर्घ हो जाता है। यथा –
सत्त+वीसा = सत्तावीसा, पझहरो – पईहरो,
लच्छिवई – लच्छीवई (दीर्घ का ह्रस्व), वारीमई (ह्रस्व का दीर्घ) – वारि+मई।

संधि–पद का विग्रह कीजिए –

सम्मादिही मिच्छदिही केवलिणाणं जंबुसामी।

संधि–निषेध – प्रकृति भाव संधि – प्रायः प्राकृत में संधि नहीं होती है। यथा – कसा उदयो कसाय + उदयो अहोअच्छीयं देवीएएत्थ साहु उसलयो – वणेअउइ।

लुक् संधि – प्राकृत में प्रायः स्वर से आगे स्वर हो तो शब्द के स्वर का लोप हो जाता है। यथा –
विज्जा+आलयो = विज्जालयो, जिणालयो – जिण+आलयो, देवालयो – देव+आलयो, सुरिंदो – सुर+इंदो, जिणिंदो – जिण+इंदो, महिंदो – मह+इंदो।

संधिपद का विग्रह कीजिए –

देविंदो धम्मिंदो णीसासूसासो वंसुप्पत्री तहेव

व्यंजन संधि – प्राकृत में प्रायः व्यंजनों का परिवर्तन होता है, इसलिए व्यंजन संधि नहीं है।

अव्यय संधि – जिसका कोई लिंग एवं वचन नहीं होता है, जो सदैव एक से होते हैं, वे अव्यय हैं।

– पद के पश्चात् 'अ' का प्रायः लोप। यथा – केण वि + केण+अवि। कहं वि – कहं अवि। धणं वि – धणं अवि।

– व्यंजनान्त पद के पश्चात् इति के 'इ' का लोप। यथा – जं ति जं इति। किं ति – किं इति।

– ओ के पश्चात् इति के 'इ' का लोप और त को द्वित्व हो जाता है। यथा – पुरिसो ति – पुरिसो इति। देवो ति – देवो इति। पुतो ति – पुतो+इति।

संधि कीजिए –

जिण+ईसो, मह+ईसो, पुव्व+उदयो, सुर+असरा, देव+आलयो।

संधि पदों का विग्रह कीजिए –

महोसही वणोली। जिणिंदो मणुजिंदो किंति जिणोति।

– सर्वनामों में प्रयुक्त एव्व एत्थ अहं आदि के स्वरों का लोप हो जाता है। यथा – अम्हेत्थ अम्हे–एत्थ, अम्हेव्व–अम्हे एव्व, जइहं – जइ+अहं।

अभ्यास

संधि प्रयोग ज्ञान

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(क) वर्णों के निकट आने पर जो परिवर्तन होता है, उसे क्या कहते हैं ?

(i) समास (ii) तद्धित
(iii) संधि (iv) क्रिया ( )

(ख) प्राकृत में मुख्यतः कितनी संधियाँ होती हैं ?

(i) चार (ii) तीन
(iii) पांच (iv) सात ( )

(ग) इनमें से किसमें दीर्घ संधि है ?

(i) सुरासुर (ii) जीवमजीवं
(iii) जिणेस (iv) महिंद ( )

(घ) इसमें लुक् लोप संधि है ?

(i) भावोदय (ii) गणेस
(iii) जीवाजीवो (iv) महिंद ( )

उत्तरमाला :

(क) – (iii), (ख) – (ii), (ग) – (i), (घ) – (iv)

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

(i) दीर्घ संधि क्या है ?

(ii) गुण संधि क्या है ?

(iii) ह्रस्व दीर्घ संधि क्या है ?

(iv) अव्यय संधि क्या है ?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

(i) संधि किसे कहते हैं ?

(ii) संधि के प्राकृत में तीन भेद कौन–कौन हैं ?

(iii) दीर्घ संधि का लक्षण लिखकर उदाहरण दीजिए।

(iv) अव्यय संधि के दो परिवर्तन दीजिए।

इसमें क्या सही है ? मिलान कीजिए –

(i) सुरासुरा	(i) अव्यय संधि
(ii) महिंद	(ii) गुण संधि
(iii) महेस	(iii) दीर्घ संधि
(iv) पुरिसो ति	(iv) लुक् संधि

उत्तरमाला –

(i) – iii, (ii) – iv, (iii) – ii, (iv) – i.

समास प्रयोग ज्ञान

समास का अर्थ है संक्षिप्तिकरण। जब दो या दो से अधिक शब्दों को आपस में मिला दिया जाता है, तब समास होता है।

समास भेद – अव्ययी भाव, तत्पुरुष, बहुब्रीहि, कर्मधारय, द्वंद्व और द्विगु, ये छह भेद हैं।

अव्ययी भाव – जिसमें अव्यय की प्रधानतः हो, वह अव्ययी भाव समास है। यथा –

विभक्ति अर्थ – अप्पम्मि इति – अज्म्मप्पं

समीप अर्थ – उवगुरुं – गुरुणो समीवं, उवदिसं – दिसाए समीवं।

पश्चात् अर्थ – अणुजिणं – जिणस्स पच्छा। अणुभोयणं – भोयणस्स पच्छा।

अभाव अर्थ – णिम्मोहो – मोहस्स अभावो, णीरागो – रागस्स अभावो।

नाश अर्थ – विरागो – विगदस्स रागो – अपावं – पावस्स णासो।

यथा अर्थ – अणुरूवो रुवस्स जोग्गो, अणुबमं – उमस्स जोग्गो।

आनुपूर्ण्य अर्थ – अणुजेहो – जेहस्स आणुपुव्वेणं।

योग अर्थ – सचक्कं चक्केणं जुगवं।

तत्पुरुष – जिसमें प्रथम पद विशेषण और दूसरा पद विशेष्य (मुख्य) हो, वहां तत्पुरुष समास होता है। इसमें समान विभक्तियों का प्रयोग होता है।

प्रथमा तत्पुरुष – किणहसप्पो – कणहोसप्पो। सेयवसण्एां सेयं वसणं।

द्वितीया तत्पुरुष – इसमें सिअ, अतीद, पडिद, गअ, अइअत्थ (अत्यस्त्य) पत्र (प्राप्त) और आवण्ण (आपन्न) शब्द की प्रधानता होती है। किसणसिओ – किसणं सिओ। इंदियातीदो – इंदिया – अतीदो। अग्गिपडिओ – अग्गिं पडिओ। सिवगओ – सिवं गओ मोक्खगओ सुहपत्तो – सुहं पत्तो। मेहाइअत्थो – मेहं अइअत्थो। कहावण्णो – कहं आवण्णो।

तृतीया तत्पुरुष – इसमें प्रथम पद तृतीयांत होता है। यथा– किवाजुतो – किवाएजुतो। णिवसंगो – णिवेणसंगो। णेतविहीणो – णेतेहिं विहीणो। रसपुण्णं – रसेण पुण्णं।

चतुर्थी तत्पुरुष – इसमें प्रथम पद चतुर्थी का होता है। यथा – मोक्खम्माणं – मोक्खस्स माणं (मोक्ष के लिए ध्यान)। णाणज्झयणं – णाणस्स – अज्झयणं (ज्ञान के लिए अध्ययन)।

पंचमी तत्पुरुष – इसमें प्रथम पद पंचमी का होता है। यथा – चोरभयं – चोराओभयं। दंसणभहो – दंसणाओ भहो।

षष्ठी तत्पुरुष – इसमें प्रथम पद षष्ठी का होता है। यथा – देवकुमारा – देवस्स कुमारो – (देव का कुमार)।

विज्जठाणं – विज्जाए ठाणं (विद्या का स्थान), जिणिंदो – जिणाणं इंदो। देवधुई – देवस्स धुई। राजपुत्रो – राजस्स पुत्रो (राजा का पुत्र)।

सप्तमी तत्पुरुष – इसमें प्रथम पद सप्तमी का होता है। यथा – कलापवीणो – कलास पवीणो (कला में प्रवीण), णेहरतो – णेहे रतो, पुरिसोतमो – पुरिसेसु उतमो। णरसेट्ठो – णरेसुं सेट्ठो (नरों में श्रेष्ठ)।

इसमें प्रायः प्रवीण, रत, उत्तम, चंड, धूर्त, अंतर, पटु, पंडित, कुशल, चपल, निपुण आदि शब्दों का प्रयोग होता है।

बहुब्रीहि समास – जब सभी पद किसी अन्य पदार्थ के विशेषण के रूप में प्रयुक्त होते हैं, तब बहुब्रीहि समास होता है। यथा – चक्कवट्टी – चक्कं हत्थे जस्स सो (चक्रवर्ती), चंदमुही (कन्या), महाबाहू – महंता बाहुणो जस्स सो महाबाहू। पीअंबरो सेयंबरो दिगंबरो चक्कपाणी (नारायण।)

कर्मधारय समास – जिसमें दो पदों का आधार समान हो, उसे कर्मधारय समास कहते हैं। यथा – मुहचंदो – मुह चंदोव्व महावीरो गब्भिणी सुक्कपक्खो किण्हपक्खो महाराओ सीओण्हं घणसमो वज्जदेहो।

द्वन्द समास – जब दो या दो से अधिक संज्ञाएं आती हैं, तब द्वन्द समास होता है। यथा – जीवाजीवो।

इतरेतर द्वन्द – देव–देवी – सुरासुरा, पुण्ण – पावं। पत्र–फल– पुप्पुं सुहदुहं। सामण्ण–विसेसो भेदाभेदो।

समाहार द्वन्द – तवसंजमो। णाण–दंसण–चारित–तव–वीरियं। असणं पाण।

एकशेष द्वन्द – पिअरा ससुरा जिणा।

द्विगु समास – जिस पद में पूर्व पद संख्या वाला और उत्तर पद संज्ञा हो, तब द्विगुसमास होता है। यथा – तिरयणं, चडकसायं, पंचपावं। तिलोयो चडदिसा छद्दव्वं सततच्चं अट्ठकम्मं। णवपयत्थं दसधम्मो।

अभ्यास

समास प्रयोग ज्ञान

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(क) समास का अर्थ है ?

(i) वर्ण परिवर्तन (ii) संक्षिप्तिकरण
(iii) लुक् होना (iv) प्रकृति ( )

(ख) समास होते हैं ?

(i) पांच (ii) चार
(iii) छह (iv) तीन ( )

(ग) णिम्मोहो में कौनसा समास है ?

(i) तत्पुरुष (ii) बहुब्रीही
(iii) कर्मधारय (iv) अव्ययी भाव ( )

(घ) इस 'णेतविहीणो' में कौनसा समास है ?

(i) तत्पुरुष (ii) द्वन्द
(iii) द्विगु (iv) अव्ययी भाव ( )

(ङ) इसमें अव्ययी भाव समास है ?

(i) दंसणभट्ठो (ii) जीव–अजीवो
(iii) रदणतयं (iv) अणुरुषो ( )

उत्तरमाला –

(क) – (ii), (ख) – (iii), (ग) – (iv), (घ) – (i), (ङ) – (iv)

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न –

(i) समास किसे कहते हैं ?

(ii) जिसमें अव्यय की प्रधानता हो उसे कहते हैं ?

(iii) विभक्तियों का प्रयोग किसमें होता है ?

(iv) जिसमें दो पदों का आधार हो उसे क्या कहते हैं ?

लघुत्तरात्मक प्रश्न –

(i) बहुब्रीहि समास किसे कहते हैं ? उदाहरण दीजिए।

(ii) कर्मधारय किसे कहते हैं ? उदाहरण दीजिए।

(iii) द्वन्द समास किसे कहते हैं ? उदाहरण दीजिए।

(iv) द्विगु समास किसे कहते हैं ? उदाहरण दीजिए।

इनका सही मिलान कीजिए –

(i) चंदमुही	(i) कर्मधारय
(ii) सुक्कपक्खो	(ii) द्वन्द
(iii) सुर–असुर	(iii) बहुब्रीहि

समास पहचानिए और उनका नाम लिखिए –

रायपुत्रो, णाण–दंसणं, सचक्कं, तिगुत्ती छद्दव्वं, हंसवाहिणी, जिदिंदिओ, सुह–दुक्खं।

अव्यय–परिचय

अव्यय – जो कभी परिवर्तन न हो, जो सदा एक से रहे, वे अव्यय हैं।

– उपसर्ग

– क्रिया विशेषण

– समुच्चय बोधक (Conjunctions)

– मनोविकार सूचक (Interjections)

उपसर्ग – जो 'अव्यय' क्रिया से पूर्व आते हों, वे उपसर्ग हैं।

उपसर्ग	**अर्थ**	**उदाहरण**
अइ	अधिक, बहुलता	अइणिंदा, अइमाण
अहि	ऊपर, श्रेष्ठ	अहियार, अहिवइ
अणु	पीछे	अणुचर, अणुकरण
अहि (अभि)	ओर	अहिव्यणं, अहिमुहं (अभिमुख)
अव	दूर	अवमाण (अपमान)
उव	निकट	उवासग (उपासक) उवासणा
प	अधिक	पकंप, पणाम
पडि	ओर	पडिक्कमण, पडिगम (प्रतिगम)

क्रिया–विशेषण अव्यय

क्रि.वि.	**अर्थ**	**प्रयोग**
अईव (अतीव)	पर्याप्त, बहुत	अईव दुही अत्थि।
अओ (अतः)	इसलिए	सो जरेण पीडिओ अओ णो पढइ।
अग्गे (अग्रे)	आगे	अग्गे गच्छइ।
अण्णहा (अन्यथा)	विपरीत	सव्वण्हू वाणी अण्णहा णो।
अज्ज (अद्य)	आज	अज्ज गच्छामि विज्जालयं।
अत्थ (अत्र)	यहां	अत्थ राजए मुणी।
अविवि (अपि)	भी	तुमं वि आगच्छसि।
अंतरेण	बिना	चारित्रं अंतरेण मुती णत्थि।

अहिओ (आभितः)	चारों ओर	गामं अहिओ वणं अत्थि।
एव	ही	तुमं एव पिउ असि।
कधं	कैसे !	कधं चरेस्सए।
कुओ (कुतः)	कहां से	कुओ समायासि।

अन्य क्रिया विशेषण – केवलं खु खलु (निश्चय ही), झडिइ (झरिति) (शीघ्र), तओ (ततः–तदनंतर)। तत्थ (तत्र–वहां)। तम्हा (तस्मात्–इसलिए)। ण णो परिओ (परितः – चारों ओर)। पुणो (फिर)। पुरओ (पुरतः आगे)। जत्थ (यत्र–जहां)। अहा (यथा–जैसे)। तहा (तथास–वैसे)। अदा (यतः–जब)। सणिअं सणिअं (शनैः शनैः – धीरे–धीरे)। सदा (हमेशा)। सह (साथ)।

समुच्चयबोधक (Conjunctions)

अहवा	या वा	किं अहवा णो किं /	जीवो अहवा आदा।
चेव	ही	णो रोचए चेव।	
हि	निश्चय	एगो हि दोसो।	
च	और	जीवं च अजीवं च।	
तहा	और	णाणं तहा दंसणं।	

मणोविकार सूचक अव्यय (Interjections)

आ	आ मिदो सि। आ हओ सि।
अहो	अहो देसस्स दोभग्गं।
आम	आम णायं।
हा	हा पिए।

पहचानिए और अव्यय बतलाइए –

अग्गे अओ अत्थ तत्थ अहुणा (अब) एगआ खु खलु णो च हा इत्यादि।

इज्ज प्रयोग –

– भाववाच्य तथा कर्मवाच्य की मूलक्रिया एवं प्रत्ययों के मध्य 'इज्ज' प्रत्यय होता है। यथा – हस+इज्ज+इ = हसिज्जइ। पढ+इज्ज+इ = पढिज्ज्इ।

अभ्यास

अव्यय–परिचय

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(i) पडि का अर्थ है ?

(क) ऊपर (ख) ओर
(ग) अधिक (घ) निकट ( )

(ii) अईव का अर्थ है ?

(क) विपरीत (ख) यहां
(ग) आज (घ) पर्याप्त ( )

(iii) कध का अर्थ है ?

(क) कैसे (ख) कहां से

(ग) चारों ओर (घ) आगे ( )

उत्तरमाला –

(i) – (ख), (ii) – (घ), (iii) – (क)।

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न –

(i) अव्यय का एक उपसर्ग दीजिए।

(ii) क्रिया विशेषण का एक अव्यय लिखिए।

(iii) समुच्चय बोधक का एक अव्यय लिखिए।

(iv) मनोविकार सूचक अव्यय का एक शब्द लिखिए।

लघुत्तरात्मक प्रश्न –

(i) अव्यय किसे कहते हैं ?

(ii) अव्यय के भेदों में से दो के नाम लिखकर उदाहरण दीजिए।

(iii) मनोविकार सूचक अव्यय का एक प्रयोग दीजिए।

(iv) समुच्चय बोधक का एक वाक्य लिखिए।

सर्वनामों का प्रयोग ज्ञान

सर्वनाम – जो संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त हों, वे सर्वनाम हैं।

'अम्ह' सर्वनाम शब्द

	एकवचन	**बहुवचन**
प्रथमा	अहं	अम्हे
द्वितीया	मं ममं	अम्हे
तृतीया	मए मया	अम्हेहि
चतुर्थी	मम, मज्झ, अम्ह	अम्हाण, अम्हाणं
पंचमी	ममतो, ममाओ	ममाओ, अम्हाहिंतो
षष्ठी	मम, मज्झ, अम्ह	अम्हाण, अम्हाणं
सप्तमी	अम्हम्मि, ममम्मि	अम्हेसु, अम्हेसुं

'तुम्ह' सर्वनाम शब्द

	एकवचन	**बहुवचन**
प्रथमा	तुं, तुमं	तुम्ह, तुम्हे
द्वितीया	तुम, तुमं, तुं	तुम्ह, तुम्हे
तृतीया	तुए, तया, तुमे	तुम्हेहि, तुम्हेहिं
चतुर्थी	तुम्ह, तुम्हं	तुम्हाण, तुम्हाणं
पंचमी	तुज्झ, तुमाओ	तुम्हाहिंतो, तुम्हासुंतो
षष्ठी	तुम्ह, तुम्हं	तुम्हाण, तुम्हाणं
सप्तमी	तुम्हम्मि	तुम्हेसु, तुम्हेसुं

पुंलिंग 'त' सर्वनाम शब्द

	एकवचन	**बहुवचन**
प्रथमा	सो	ते
द्वितीया	तं	ते
तृतीया	तेण, तेणं	तेहि, तेहिं
चतुर्थी	तस्स	तण, ताणं, तेसिं
पंचमी	ततो, ताओ, तम्हा	ततो, ताओ, ताहिंहो
षष्ठी	तस्स	ताण, ताणं, तेसिं

सप्तमी	तस्सिं, तहिं	तेसु, तेसुं

संकेत – 'त' सर्वनाम की तरह क, ज, सव्व, अण्ण, उहय आदि के रूप बनेंगे।

पुंलिंग 'क' सर्वनाम शब्द

	एकवचन	**बहुवचन**
प्रथमा	को	के
द्वितीया	कं	के
तृतीया	केण, केणं	केहि, केहि
चतुर्थी	कस्स	काण, काणं, केसिं
पंचमी	कतो, काओ, कम्हा	कतो, काओ, काहिंतो
षष्ठी	कस्स	काण, काणं, केसिं
सप्तमी	कस्सिं, कहिं	केसु, केसुं

पुंलिंग 'ज' सर्वनाम शब्द

	एकवचन	**बहुवचन**
प्रथमा	जो	जे
द्वितीया	जं	जे
तृतीया	जेण, जेणं	जेहि, जेहिं
चतुर्थी	जस्स	जाण, जाणं, जेसिं
पंचमी	जतो, जाओ, जम्हा	जतो, जाओ, जाहिंतो
षष्ठी	जस्सं	जाण, जाणं, जेसिं
सप्तमी	जस्सिं	जेसु, जेसुं

नपुंसकलिंग 'ज' सर्वनाम शब्द

	एकवचन	**बहुवचन**
प्रथमा	जं	जाइ, जाइं, जाणिं
द्वितीया	जं	जाइ, जाइं, जाणिं
तृतीया	जेण, जेणं	जेहि, जेहिं
चतुर्थी	जस्स	जाण, जाणं, जेसिं
पंचमी	जतो, जाओ	जतो, जाओ, जाहिंतो
षष्ठी	जस्स	जाण, जाणं, जेसिं
सप्तमी	जस्सिं, जहिं	जेसु, जेहां

नपुंसकलिंग 'क' सर्वनाम शब्द

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	किं, कं	काइ, काइं, काणि
द्वितीया	किं, कं	काइ, काइं, काणि
तृतीया	केण, केणं	केहि, केहिं
चतुर्थी	कस्स	काण, काणं, केसि
पंचमी	कतो, काओ	कतो, काओ, काहिंतो
षष्ठी	कस्स	काण, काणं, केसिं
सप्तमी	कस्सिं, कहिं	केसु, केसुं

स्त्रीलिंग 'का' सर्वनाम शब्द

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	का	काओ, काउ
द्वितीया	कं	काओ, काउ
तृतीया	काए	काहि, काहिं
चतुर्थी	काए	काण, काणं, कासिं
पंचमी	काए, कतो	कतो, काहिंतो
षष्ठी	काए	काण, काणं, कासिं
सप्तमी	काए	कासु, कासुं

स्त्रीलिंग 'जा' सर्वनाम शब्द

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	जा	जाओ, जाउ
द्वितीया	जं	जाओ, जाउ
तृतीया	जाए	जाहि, जाहिं
चतुर्थी	जाए	जाण, जाणं, जासिं
पंचमी	जाए, जतो	जातो, जाहिंतो
षष्ठी	जाए	जाण, जाणं, जासिं
सप्तमी	जाए	जासु, जासुं

संकेत – 'जा' की तरह सव्वा, अण्णा, इमा आदि सर्वनाम शब्दों की तरह रूप चलेंगे।

पहचानिए और लिंग सहित विभक्ति नाम बतलाइए –

केसिं, कस्स, जतो, जाओ, जासु, अम्हाण, अम्हेहि।

पुंलिंग 'इम' सर्वनाम शब्द

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	इमो, अयं, इणं	इमे, णे
द्वितीया	इमं, इणं	इमे, णे
तृतीया	इमेण, इमेणं, णेण, णेणं	इमेहि, इमेहिं, णेहि, णेहिं
चतुर्थी	इमस्स, अस्स	इमाण, इमाणंसिं
पंचमी	अतो, इमाओ	इमाओ, इमाहिंतो
षष्ठी	इमस्स, अस्स	इमाण, इमाणंसिं
सप्तमी	इमम्मि, अस्सिं, इह	इमेसु, इमेसुं

स्त्रीलिंग 'इमा' सर्वनाम शब्द

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	इमा	इमाओ, इमाउ
द्वितीया	इमं, इणं	इमाओ, इमाउ
तृतीया	इमाए	इमाहि, इमाहिं
चतुर्थी	इमाए	इमाण, इमाणं सिं
पंचमी	इमतो, इमाए	इमाओ, इमाहिंतो
षष्ठी	इमाए	इमाण, इमाणं सिं
सप्तमी	इमाए, इमसिं	इमासु, इमासुं

नपुंसकलिंग 'इम' सर्वनाम शब्द

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	इमं	इमाइ, इमाइं, इमाणि
द्वितीया	इमं	इमाइ, इमाइं, इमाणि

संकेत – 'इम' शब्द के तृतीया से सप्तमी पर्यन्त पुंलिंग शब्द की तरह रूप चलेंगे।

अभ्यास

सर्वनाम प्रयोग ज्ञान

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(i) तृतीया का प्रयोग रूप सर्वनाम कौनसा है ?

(क) मम (ख) मए

(ग) अम्ह (घ) अम्हे ( )

(ii) तुमाओ किस विभक्ति का रूप है ?

(क) षष्ठी (ख) सप्तमी
(ग) पंचमी (घ) चतुर्थी ( )

(iii) तेण/तेणं किस विभक्ति का रूप है ?

(क) तृतीया (ख) चतुर्थी
(ग) सप्तमी (घ) प्रथमा ( )

(iv) जं किस विभक्ति का रूप है ?

(क) तृतीया (ख) चतुर्थी
(ग) पंचमी (घ) द्वितीया ( )

उत्तरमाला –

(i) – (ख), (ii) – (ग), (iii) – ( ), (iv) – (घ)

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

(i) का स्त्रीलिंग सर्वनाम का 'काओ' रूप किसमें बनता है ?

(ii) जेसिं किस विभक्ति का रूप है ?

(iii) जतो किस विभक्ति का रूप है ?

(iv) कम्हा किस विभक्ति का रूप है ?

(v) जाइ किस विभक्ति का रूप है ?

लघुत्तरात्मक प्रश्न –

(i) 'जा' सर्वनाम स्त्रीलिंग के तृतीया के रूप लिखिए।

(ii) 'क' सर्वनाम नपुंसकलिंग के प्रथमा एवं द्वितीया के रूप लिखिए।

(iii) 'इम' सर्वनाम के षष्ठी में क्या रूप बनेंगे ?

(iv) पंचमी विभक्ति सर्वनाम 'इम' के रूप लिखिए।

प्राकृत भाषा का सामान्य परिचय

प्राकृत भाषा की गणना मध्य भारतीय आर्य भाषा में की जाती है और इसका विकास वैदिक, संस्कृति व छान्दस भाषा से माना जाता है। अतः प्राकृत की प्रकृति वैदिक भाषा से मिलती–जुलती है। स्वर भक्ति के प्रयोग प्राकृत व छान्दस दोनों भाषा में समान रूप से पाये जाते हैं। अतः यह मानना उचित व तर्कसंगत प्रतीत होता है कि छान्दस भाषा से प्राकृत की उत्पत्ति हुई, जो उस समय की जनभाषा रही होगी। लौकिक संस्कृत व संस्कृत भाषा भी छान्दस से विकसित हुई है। अतः विकास की दृष्टि से संस्कृत व प्राकृत दोनों सहोदरा है।

प्राचीन भारत की मूल भाषा या बोली का क्या रूप था यह तो स्पष्ट नहीं है पर आर्यों की अपनी एक भाषा थी। उस भाषा पर अन्य जातियों का भी प्रभाव पड़ा, उससे छान्दस भाषा विकसित हुई। इस छान्दस भाषा को विद्वानों ने पद, वाक्य, ध्वनि व अर्थ इन चारों अंगों को विशेष अनुशासनों में आबद्ध कर दिया। फलतः छान्दस का मौलिक विकसित रूप प्राकृत कहलाया। साहित्य निबद्ध प्राकृत का विकास मध्य भारतीय आर्य भाषा से माना जाता है। बुद्ध व महावीर के बाद इसका एक नया अध्याय प्रारम्भ हुआ। शिष्टता के घेरे को तोड़कर इतनी तेजी से यह आगे बढ़ी कि संस्कृत भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकीं। संस्कृत में जनोपयोगी विषयों का विवेचन प्राकृत का ही फल है अतः समय व सीमा की दृष्टि से प्राकृत का विकासकाल मध्यकाल माना जाता है।

छान्दस की उदीच्या बोली और प्राच्या दोनों ही धीरे–धीरे भिन्न प्रकार से विकसित हो रही थीं। अनार्यों का सम्पर्क भी इस परिवर्तन के पीछे काम कर रहा था। भगवान बुद्ध के समय तक संस्कृत और छान्दस में विचारों का आदान–प्रदान एक सीमित वर्ग तक ही रह गया था। स्वयं बुद्ध ने अपने उपदेशों के प्रचार–प्रसार के लिए अपनी मातृ–भाषा को ही आधार बनाया था। इसका परिणाम यही था कि प्राकृतों का विकास हुआ। संस्कृत के समान प्राकृत कोई एक साहित्यिक भाषा नहीं थी, अपितु छान्दस की बोलियों में स्थान–भेद के कारण उत्पन्न विभिन्न भाषाएँ थीं जो साहित्य–सृजन में लगी हुई थीं। साहित्य की प्राचीनता की दृष्टि से मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं को तीन मुख्य वर्गों, पर्वों अथवा अवस्थाओं में विभाजित किया जा सकता है। डॉ. चैटर्जी ने इसे चार अवस्थाओं में विभक्त किया। (भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी नामक पुस्तकः चैटर्जी)। किन्तु आगे चल कर स्वयं चैटर्जी ने भी तीन ही वर्ग स्वीकार कर लिये। डॉ. उदयनारायण तिवाड़ी ने इन वर्गों को पर्व की संज्ञा दी है। 500 ई.पू. से 1000 ई. तक भारतीय आर्य भाषा विभिन्न प्राक तों तथा अपभ्रंशों में विकसित होती रही, यही विकास आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में परिणत हो गया। ये तीन अवस्थाएँ या पर्व हैं। इनकी काल गणना डॉ. उदय नारायण तिवाड़ी ने 600 ई. पू. से 1000 ई. तक की है तथा डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने 500 ई. पू. से 1000 ई. तक की है। भाषाओं के विकास में एक शताब्दी का आगे–पीछे विचार होना कोई असंगत नहीं है।

(1) पालि तथा अशोक की धर्म लिपियाँ (500 ई. पू. से 1 ई. पू. तक)

(2) साहित्यिक प्राकृतें (1 ई. से 500 ई. तक)

(3) अपभ्रंश भाषाएँ (500 ई. से 1000 ई. तक)

प्राकृत शब्द की व्युत्पत्ति

मध्यकालीन भाषा का नाम प्राकृत क्यों पड़ा ? इसके सम्बन्ध में भी विभिन्न मत हैं। कुछ वैयाकरण इसकी व्युत्पत्ति 'प्रकृति' शब्द से मानते हैं। इस शब्द का विवेचन है–'प्रकियते उत्पद्यते यया सा प्रकृतिः' सर्वप्रथम प्राकृत–सर्वस्व के रचयिता चण्ड

ने प्राकृत का लक्षण इस प्रकार बताया कि प्राकृत वह भाषा–विशेष है जिसकी योनि संस्कृत है। प्राकृत भाषा के महान् वैयाकरण हेमचन्द्र ने भी अपने 'प्राकृत शब्दानुशासन' में 'अथ प्राकृतम्' सूत्र की व्याख्या करते हुये लिखा है–''प्रकृतिः संस्कृतम् तत्र भवम् तत आगतम् वा प्राकृतम्'' अर्थात् ''प्राकृत संस्कृत है, उससे उत्पन्न अथवा विकसित भाषा ही प्राकृत है।'' दण्डी ने भी अपने 'काव्यादर्श' में ऐसे ही विचार व्यक्त किये हैं। दण्डी के अनुसार महर्षियों ने संस्कृत को देववाणी कहकर उसकी व्याख्या की। इसी देववाणी से विकसित अथवा इसी के समान शब्दों वाली अनेक प्राकृतों का क्रम है। वाग्भट्ट ने भी प्राकृत को देववाणी संस्कृत से विकसित स्वीकार किया है। लक्ष्मीधर अपनी षड्भाषाचन्द्रिका में लिखते हैं–''**प्रकृते संस्कृतायास्तु विकृतिः प्राकृता मता''**। दशरूपक के टीकाकार धनिक ने प्राकृत की व्याख्या करते हुए कहा है कि ''**प्राकृतैः आगतं प्राकृतम्। प्रकृतिः संस्कृतम्''** यही मत कर्पूरमंजरी के टीकाकार वासुदेव, वाग्भटालंकार के टीकाकार सिंहदेवगणी, प्राकृत शब्द प्रदीपिका के रचयिता नरसिंह का भी है। नमि साधु सामान्य लोगों में व्याकरण के नियमो आदि से रहित सहज वचन व्यापार को प्राकृत का आधार मानते हैं।

उक्त व्युत्पत्तियों की विशेष व्याख्या से जो फलितार्थ प्रस्तुत होता है उसके अनुसार प्राकृत भाषा की उत्पत्ति संस्कृत से नहीं हुई, किन्तु ''प्रकृतिः संस्कृतम् का अर्थ है कि संस्कृत भाषा के द्वारा प्राकृत भाषा को सीखने का यत्न करना। इसी आशय से हेमचन्द्र ने प्राकृत को संस्कृत की योनी कहा है।

प्राकृत भाषा का उद्भव एवं विकास

प्राकृतों का उद्भव छान्दस और उसकी बोली के विकसित रूप का ही परिणाम है। देश–भेद के कारण ये प्राक तें भिन्न–भिन्न प्रदेशों में कुछ अन्तर से बोली जाती थीं। कुवलयमाला कहा, राज–प्रश्नीय सूत्र, विपाक सूत्र, ज्ञात सूत्र, जैन–सिद्धान्त आदि ग्रन्थ में 18 प्राकृतों का उल्लेख है, जिन्हें देशी भाषा कहा गया है। कुवलयमाला में एक वृत्तान्त है कि श्रीदत्त ने थोड़े से अन्तर पर अनेक व्यापारियों से आपूरित पण्य–वीथि को देखा, जहाँ पर व्यापारी लोग अपनी–अपनी भाषा में बात कर रहे थे। इस प्रकार श्रीदत्त ने अठारह देशी भाषाएँ बोलने वालों को देखा। इसके अतिरिक्त पारस, खस, बब्बरी आदि बोलने वालों को भी वहाँ देखा।

जैन सूत्रों में जो सूत्र अर्धमागधी में लिखे गये हैं, उनमें अनेक प्रसंग आते हैं कि कोई राजकुमार अठारह भाषाओं का ज्ञाता था या गणिकाएँ अठारह भाषाओं में पारंगत थीं। सूत्र ग्रन्थों की अर्ध मागधी की गणना महाराष्ट्री के साथ की जाती है। डॉ. बाबूराम सक्सेना सूत्र–ग्रन्थों की भाषा को प्राचीन अर्ध–मागधी कहते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि पालि के समय में ही अर्ध–मागधी समानान्तर रूप में विकसित होने लगी थी, उसमें सूत्रग्रन्थ लिखे जाने लगे थे। अठारह देशी भाषाओं का उल्लेख यह बताता है कि ये बोलियाँ अवश्य प्रकाश में आ गई थीं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वैदिक संस्कृत–काल से ही देशी भाषाएँ पनप रही थीं जिनमें सर्वप्रथम उदीच्य बोलने वालों ने अपनी बोली के आधार पर संस्कृत का रूप निर्धारित किया। इसके पश्चात् मध्यदेश की बोली विकसित पालि भाषा ने साहित्यिक वेश–भूषा धारण की और इसके साथ ही प्राच्या बोली ने मागधी के नाम से अपनी भूमिका का निर्वाह करना आरंभ कर दिया। इन दोनों प्रदेशों के बीच एक संक्रामक तत्त्वों से निर्मित बीच की बोली थी जो मध्यदेशीय और प्राच्या के तत्वों से मिश्रित थी। इस बोली के विकसित रूप को अर्ध–मागधी नाम दिया गया। जैन–धर्म के प्रचारकों ने इसे अपनी धार्मिक भाषा बनाया। जब मागधी और अर्ध–मागधी साहित्यिक परिनिष्ठित स्वरूप प्राप्त कर चुकी थी, उस समय मध्यदेश में एक अन्य भाषा पूर्ण शक्ति के साथ पनप रही थी, जिसका प्राचीन रूप पालि को कहा जा सकता है। विद्वानों ने उसे शौरसेनी प्राकृत का नाम दिया है। इनके अतिरिक्त प्राकृत वैयाकरणों ने महाराष्ट्री प्राकृत का भी नाम गिनाया है। यह प्राकृत महाराष्ट्र की बोली से विकसित होकर साहित्यिक रूप में आई थी। आधुनिक भाषा वैज्ञानिक महाराष्ट्री प्राकृत को शौरसैनी के उत्तरकालीन रूप का विकास मानते हैं। यह भाषा अपने समय की सर्वाधिक लोक–प्रिय भाषा रही है। प्राकृत वैयाकरणों ने 'प्राकृत' शब्द को महाराष्ट्री का पर्यायवाची ही बना दिया है।

इस विश्लेषण से हम कह सकते हैं कि मध्यकाल में प्राकृत भाषाएँ देश–भेद के अनुसार सात रूपों में प्रचलित थीं–

प्राकृत के प्रमुख भेद, विशेषताएँ और सोदाहरण स्पष्टीकरण

1. पालि और अशोक के शिलालेखों की भाषा
2. शौरसैनी प्राकृत
3. मागधी प्राकृत
4. अर्धमागधी प्राकृत
5. महाराष्ट्री प्राकृत
6. पैशाची प्राकृत
7. अपभ्रंश

इन सभी भाषाओं को संस्कृत की छोटी बहन कहा जा सकता है। ये संस्कृत की पुत्रियाँ नहीं हैं। इनका विकास संस्कृत के समान और समानान्तर छान्दस से ही हुआ है। डॉ. चैटर्जी तथा श्याम सुन्दर दास इस मत का पूर्ण समर्थन करते हैं कि वैदिक भाषा से ही प्राकृतों की उत्पत्ति हुई, संस्कृत से नहीं। डॉ. बाबूराम सक्सेना भी यही मत प्रकट करते हैं कि पालि में कुछ लक्षण ऐसे मिलते हैं जिनसे हम यह कह सकते हैं कि इसका विकास उत्तरकालीन संस्कृत की अपेक्षा वैदिक संस्कृत और तत्कालीन बोलियों से हुआ है।

मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं का अध्ययन हम तीन भागों में विभक्त करके ही करेंगे–

1. पालि और अशोक के शिलालेखों की भाषाएँ

संस्कृत को छोड़कर अन्य समस्त भारतीय भाषाओं का नाम प्रदेश के नाम पर पाया जाता है। प्राकृत भाषा का प्रथम उत्थान पालि और अशोक के शिलालेखों के रूप में हुआ। पालि भाषा का मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

पालि नामकरण

पालि के नाम पर बहुत बहस की गई है। इसलिए इस नाम के सम्बन्ध में सहज जिज्ञासा स्वाभाविक है। बौद्ध ग्रन्थ 'अभिधनप्पदीपिका' में पालि शब्द की निरुक्ति, तन्ति, बुद्ध–वचन तथा पंक्ति अर्थ बताया गया है जिसका सम्बन्ध पा–रक्षणे धातु से बताया गया है, 'पा पालेति रक्खतीति पालि।' कुछ विद्वान इसी को आधार मानकर 'पालि' शब्द को भाषा के रूप में स्वीकार कर लेते हैं। विद्वानों में 'पालि' शब्द के प्रयोग और अर्थ को लेकर पर्याप्त मत–भेद हैं। 'पालि' शब्द का पुराना प्रयोग भाषा के अर्थ में नहीं है। चौथी शती में श्रीलंका में दीपवंस नामक ग्रंथ लिखा गया जिसमें सर्वप्रथम 'पालि' शब्द का प्रयोग मिलता है। वहाँ यह शब्द बुद्ध वचन के लिए प्रयुक्त हुआ है। बाद में आचार्य बुद्ध धोष ने भी इस शब्द का प्रयोग बुद्ध के वचनों के अर्थ में ही किया। फिर 'पालि' शब्द का प्रयोग पालि–साहित्य के अर्थ में होने लगा। तब भी 'पालि' शब्द भाषा के अर्थ में प्रयुक्त नहीं होता था। उस समय भाषा के अर्थ में मगध भाषा या मागधी का प्रयोग किया जाता था। सिंहल के लोग अब भी बुद्ध की वाणी की भाषा को मागधी ही कहते हैं। भाषा के अर्थ में पालि शब्द का प्रयोग अत्याधुनिक है जिसे यूरोप के लोगों ने ही प्रारम्भ किया

है। प्रारम्भ में अशोक के शिलालेखों के लिए भी 'पालि' शब्द का ही व्यवहार किया जाता था। 'पालि' के सम्बन्ध में कुछ विद्वानों के विचार इस प्रकार हैं–

(1) पंडित विधुशेखर भट्टाचार्य ने संस्कृत की पंक्ति से पालि का निकास बताया है'–पंक्ति>पंत्ति>पट्टि>पल्लि>पालि। भट्टाचार्य के कथनानुसार पालि शब्द का एक अर्थ अभिधानप्पदीपिका के अनुसार पंक्ति भी होता है। 'तन्ति बुद्धवचनं पंति पालि'। अतः पहले पालि शब्द पंक्ति के अर्थ में प्रयुक्त होता था, बाद में ग्रन्थ की पंक्ति के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। बुद्ध घोष ने पालि शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया है। भिक्षु जगदीश कश्यप ने इस मत का खण्डन किया है।

(2) भिक्षु जगदीश कश्यप विधुशेखर भट्टाचार्य से असहमत होते हुए कहते हैं कि पंक्ति के लिए लिखित ग्रन्थ होना आवश्यक है। त्रिपिटिक की रचना पहली शती ई.पू. में हुई। अतः 500 ई.पू. से 1 ई.पू. तक पालि शब्द का प्रयोग ग्रन्थ के बिना पंक्ति के लिए कैसे हो सकता है? मूल त्रिपिटिक में कहीं भी पालि शब्द का प्रयोग पंक्ति के अर्थ में नहीं हुआ है। पंक्ति के स्थान पर ग्रन्थ के साथ अवश्य 'पालि' जोड़ दिया जाता है। पालि शब्द का अर्थ पंक्ति होता तो उसका प्रयोग सदा बहुवचन में ही होता है, जबकि इसका प्रयोग सदा एकवचन में ही होता है।

भिक्षु जगदीश कश्यप पालि शब्द का विकास 'परियाय', 'पलियाय' शब्द से मानते हैं। इसके पीछे दो तर्क हैं कि परिचय शब्द का अर्थ बुद्ध–वचन होता है। इस अर्थ में अनेक बौद्ध ग्रन्थों में परियाय शब्द का प्रयोग किया गया है। र के स्थान पर ल हो जाना मागधी की विशेषता है। अतः 'पालि' शब्द मागधी भाषा का है। पालि में इसके स्थान पर 'पारि' शब्द भी मिलता है। किन्तु इस पर विश्वास नहीं जमता कि बुद्ध के अनुयायियों ने पालि के 'पारि' शब्द को न अपनाकर मागधी के 'पालि' को क्यों अपनाया ? कश्यप की यह धारणा कि यह परियाय >पलियाय >पालियाय >पालि आदि रूपों में विकसित हुआ है, डॉ. उदयनारायण तिवाड़ी की दृष्टि में उचित व प्रामाणिक हैं।

(3) भिक्षु सिद्धार्थ पालि शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के पाठ शब्द से मानते हैं। इनके अनुसार अनेक वेदपाठी ब्राह्मण भी बौद्ध–धर्म में दीक्षित हुए। वे अपने साथ अनेक वैदिक शब्द भी लेकर आये। 'पाठ' शब्द वेदों के पाठ–स्वाध्याय के लिए प्रयुक्त होता था। इसी अर्थ में बुद्ध–वचनों के पाठ के लिए भी स्वीकार कर लिया गया। संस्कृत की मूर्धन्य ध्वनियाँ पालि भाषा में 'ल' में बदल जाती हैं। अतः पाठ का पाल तथा मिथ्या सादृश्य के आधार पर पालि हो गया। किन्तु यह क्लिष्ट कल्पना मात्र ही लगती है।

(4) एक मत यह है कि वैदिक या संस्कृत की तुलना में यह भाषा पल्लि यानी गाँव की भाषा है। इसी से 'पल्लि' कहलायी।

(5) कुछ विद्वानों का मत है कि प्राकृतों में यह सबसे पुरानी प्राकृत है प्राकृत>पाकट>पाअड>पाअल>पालि। यह व्युत्पत्ति भी खींचतान वाली ही है।

(6) 'पा पालेति रक्खतीति' के अनुसार 'पा' में 'लि' प्रत्यय जोड़कर पालि शब्द बना है।

(7) कौशाम्बी का विचार है कि पाल का अर्थ होता है, रक्षा करना और बुद्ध के उपदेश से सबकी रक्षा होती है। अतः उपदेशों की भाषा पालि हुई।

(8) प्रालेय या प्रालेयक अर्थात् पड़ौसी से पालि की उत्पत्ति के लिए दूर की कौड़ी लगाई गई है।

(9) 'प्रकट' शब्द से भी पालि की उत्पत्ति की संभावना व्यक्त की गई है। यथा>प्रकट>पाअड>पालि।

(10) डॉ. मैक्समूलर ने पाटलिपुत्र की भाषा से 'पालि' की उत्पति का उल्लेख किया है। पाटलि का 'ट' लुप्त हो गया और 'पालि' शब्द रह गया। यह भी सन्तोषजनक नहीं है।

'पालि' से तात्पर्य

जिस प्रकार वेदों के लिए संहिता शब्द का प्रयोग किया जाता था, उसी प्रकार प्रारम्भ में त्रिपिटक ग्रन्थों के लिए पालि का प्रयोग होता था। अनेक उदाहरण ऐसे हैं जिनसे ज्ञात होता है कि 'पालि' शब्द का प्रयोग मूल ग्रन्थों के लिए ही हुआ है। कालान्तर में मूल ग्रन्थों की भाषा के लिए 'पालि' की भाषा का इस प्रकार का प्रयोग चलता रहा होगा जो बाद में भाषा का ही परिचायक बन गया होगा।

मूल त्रिपिटिकों की भाषा मागधी है। इन त्रिपिटिकों में जो वचन लिपिबद्ध हैं, उनकी मूल अभिव्यक्ति भगवान बुद्ध ने अपनी मातृ–भाषा में की थी, निश्चय ही मागधी थी। बुद्ध के शिष्यों का आग्रह तथागत के उपदेशों को छन्दोबद्ध करने का रहा था, जिसे टाला नहीं जा सका। मध्य देश के प्रति लोगों में उस समय भी आकर्षण था। बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् मध्य देश की भाषा में बुद्ध के मौखिक प्रवचनों को लिपिबद्ध होना आवश्यक था। अतः उस समय मध्य देश की जो भी बोली या भाषा थी, उसमें बुद्ध–वाणी का संग्रह किया गया। उस भाषा का नाम पालि रख दिया गया। पालि मध्य देश की भाषा का पूर्ण प्रतिनिधित्व नहीं करती। यह उस समय की भाषाओं की खिचड़ी है।

पालि भाषा का क्षेत्र एवं आधार

मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं में सर्वप्रथम पालि ने परिनिष्ठित रूप धारण किया था। बौद्ध–धर्म के सभी प्रमुख ग्रन्थ इसी भाषा में हैं। बौद्ध–धर्मावलम्बी इस भाषा का उद्‌गम स्थल मगध–प्रदेश को मानते हैं जो भाषा को किसी भी प्रदेश की भाषा नहीं कहा जा सकता। 'पालि' के क्षेत्र के विषय में विद्वानों की विभिन्न धारणाएँ हैं। डॉ. सरनाम सिंह शर्मा ने इन विद्वानों को छः वर्गों में बाँटकर प्रस्तुत किया है–

प्रथम वर्ग में वे विद्वान हैं जो पालि का सम्बन्ध मागधी से मानते हैं। श्रीलंका के विद्वान तथा मैक्सवेलेजर, जेम्स, जार्ज ग्रियर्सन, श्रीमती डेविड्स आदि का यही मत है कि पालि मगधप्रदेश की बोली पर आधारित है। दूसरा वर्ग उन विद्वानों का है जो पालि भाषा को पूर्व की बोली के अनुवाद की साहित्यिक भाषा मानते हैं जो मध्य देश की बोलियों पर आधारित थी। ये इसे पश्चिमी हिन्दी की पूर्वजा मानते हैं। इनमें सर्वश्री लूडर्स, मिलवाँ लेवी, डॉ. कीथ, प्रो. टर्नर, चैटर्जी आदि विद्वान हैं। तीसरे वर्ग के ओल्डन वर्ग, डॉ. मूलर आदि पालि को कलिंग की बोली पर आधारित मानते हैं। चौथा वर्ग डॉ. स्टेनकोनो तथा आर. ओ. फ्रैंक आदि का है जो पालि को विंध्याचल क्षेत्र की भाषा मानते हैं। पाँचवाँ वर्ग उन विद्वानों का है जो पालि का उद्‌गम कौशल प्रदेश की बोली को मानते हैं। इनमें, प्रो. रायस डेविस ही प्रमुख हैं। छठे वर्ग में वेस्टरगार्ड और ई. कुट्टन आदि विद्वान हैं जो पालि का उद्‌गम स्थल उज्जैन प्रदेश को बतलाते हैं।

विभिन्न प्राकृतों से तुलना करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि पालि किसी पूर्वी भाषा पर आधारित नहीं है। यह बुद्ध के जीवन काल की भाषा भी नहीं है। बुद्ध चाहते थे कि लोग अपनी भाषा में उनके उपदेशों को ग्रहण करें। इसलिए भगवान बुद्ध ने विभिन्न प्रादेशिक बोलियों में अपनी बातें प्रकट कीं। लोगों ने भिन्न–भिन्न भाषाओं में बुद्ध के उपदेशों का संग्रह भी किया। तब इन विभिन्न बोलियों में निहित उपदेशों को एक सर्व–सम्मत भाषा में लाने का प्रश्न उपस्थित हुआ होगा।

बौद्ध–भिक्षुओं पर विद्वता की दृष्टि से मध्यप्रदेश के निवासियों का प्रभुत्व था। बौद्ध–भिक्षु प्रायः संस्कृत के पंडित होते थे। अनेक भाषाओं वाले भिक्षु विहारों में एक स्थान पर रहते थे। मध्य देश की भाषा की प्रधानता के साथ विभिन्न बोलियों और भाषाओं में मिश्रण हो रहा था। परस्पर विरोध का भाव व्यक्त होने पर विद्वानों ने उन बोलियों का मिश्रित परिनिष्ठित रूप तैयार करके धर्म–ग्रन्थ उसी मिश्रित बोली में तैयार किये होंगे, जिसे बिहार में रहने वाले सभी भिक्षु अपनी बोली समझें। तब इस नवीन मिश्रित भाषा के नाम की समस्या उठी होगी और इसे 'पालि' नाम से अभिहित किया होगा। जब कोई प्रादेशिक नाम इस भाषा

के लिए नहीं मिला तो उन्होंने 'पालि' अर्थात् 'एक पंक्ति में खड़े रहकर शास्ता के उपदेशों का अनुगमन करने वालों की भाषा, नाम दिया होगा। पालि का अर्थ 'पिटक' भी लें तो भी पिटकों की भाषा को 'पालि' कहना अनुचित नहीं है।

इससे यह स्पष्ट है कि पालि किसी प्रदेश विशेष की भाषा नहीं है। पालि एक मिश्र–भाषा है। जिसमें मध्य देश की बोलियों की प्रवृत्तियों की प्रधानता है। कुछ अंश इसमें प्रादेशिक बोलियों के भी हैं।

पालि की सामान्य विशेषताएँ

'पालि' प्राकृत की सामान्य विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं–

ध्वनियाँ :

1. पालि में अधिकाँश वैदिक ध्वनियों का प्रयोग मिलता है। स्वरों में अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ओ के साथ ह्रस्व ऍ तथा ओ का विकास होता दिखाई देता है।

2. व्यंजनों में क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग, प वर्ग, य, र, ल, व, स, ह तथा वैदिक ध्वनियाँ ल, ल्ह भी मिलती हैं, जब कि ये दोनों ध्वनियाँ संस्कृत में नहीं मिलतीं।

3. ऋ, ॠ, ऌ, ॡ , ऐ, औ, श, भा विसर्ग या अघोष ह, जिव्हामूलीय उपध्मानीय से दस ध्वनियाँ लुप्त हो गई थीं।

4. ऋ, ॠ के स्थान पर प्रायः अ, इ या इ या उ मिलते हैं, जैसे–ऋणम् से इणम् ऋषि से इसि, ऋतु से उतु, गह्म् से गहं।

5. ऌ, ॡ के स्थान पर ल हो गया तथा ऐ के स्थान पर ए एवं औ के स्थान पर ओ हो गया। ऐरावण>एरावण, औदरिक>ओदरिक।

6. अनुनासिकों में 'ण' ध्वनि पद के आदि में भी मिलती है।

7. स्वरों के बीच के ड्, ढ् प्रायः ल ल्ह हो जाते हैं। षोड़श >सोलह।

8. म् सर्वत्र अनुस्वार हो गया और पदान्त 'न्' 'म' बदल जाता है।

9. ऊ म ध्वनियों में श, भा के स्थान पर केवल स मिलता है।

10. अघोष व्यंजन सघोस हो गये (क>ग, च>ज, थ>ध) तथा स्वर भक्ति, समीकरण, विषमीकरण, विपर्यय आदि की प्रवृत्तियाँ उभरीं।

11. व्यंजनान्त प्रतिपादिक स्वरान्त हो गये।

रूप–तत्व :

1. पालि में ध्वनि और रूप तत्कालीन बोलियों से प्रभावित होने लगे।
2. कारक रूप बनाने के लिए पालि भाषा ने छान्दस और संस्कृत के रूपों की विविधता का परित्याग कर दिया।
3. ध्वनि और रूप की दृष्टि से पालि वैदिक भाषा के ही निकट है, यद्यपि शब्द–रूपों की संख्या में पर्याप्त कमी आई।
4. कारकों और लिंगों में छान्दस की भाँति पालि में पर्याप्त मात्रा में व्यत्यय देखा जाता है, जैसे चतुर्थी के स्थान पर भाठी का प्रयोग (ब्राह्मस्स धनं ददाति, में ब्राह्मणाय को बदल दिया गया)। तृतीया के स्थान पर पंचमी का प्रयोग यथा तृतीया और पंचमी में 'मुनिया'। अकारान्त शब्दों के रूपों में एकरूपता नहीं पाई जाती।

5. लिंग के क्षेत्र में क्षय के चिह्न नहीं मिलते। सामान्यतः तीनों लिंग हैं किन्तु नपुंसक लिंग के रूपों के स्थान पर पुल्लिंग रूपों के प्रयोग देखने को मिलते हैं। यथा–'में निरत मनो' के स्थान पर 'मे निरतो मनो' मिलता है।

6. वचनों में द्विवचन का लोप हो गया। उसके स्थान पर बहु–वचन का प्रयोग होने लगा।

7. व्यंजनान्त प्रतिपादिक समाप्त हो गये और सभी प्रतिपादक स्वरान्त हो गये। इनमें कहीं–कहीं अन्त्य व्यंजन का लोप हो गया। शरत्>शरद।

धातु रूप :

1. धातुओं के गणों की संख्या दस से घट कर सात रह गई। ये हैं–भ्वादि, रुधादि, दिवादि, स्वादि, क्रयादि, तनादि और चुरादि।

2. धातुओं का प्रयोग आत्मनेपद और परस्मैपद (दो पदों) में किया गया है। किन्तु आत्मनेपद अत्यल्प मात्रा में है। पद–सम्बन्धी अव्यवस्था भी है।

3. पालि में लकार संस्कृत और छान्दस के समान नहीं हैं, अपितु भिन्न हैं। उनकी संख्या भी दस से घटकर आठ रह गई–वत्तमाना, पंचमी, सत्तमी, परोक्खा, हीयत्तनी, अज्जतनी, भविस्सनित, कालत्तिपन्ति।

4. धातुओं के रूप तीन पुरुषों और दो वचनों में ही मिलते हैं।

5. पालि में सन्नत, यडन्त यङ लुगन्त तथा णिजन्न रूपों के प्रयोग भी हुए हैं।

6. कष्दन्त रूप भी उपलब्ध होते हैं। पूर्वकालिक क्रिया में छान्दस का ही अनुकरण किया जाता है क्योंकि 'ल्यप्' और 'क्त्वा' प्रत्यय नियम विहीन हैं। छान्दस के 'त्वाय' के स्थान पर 'त्वान' मिलता है, जिसे संस्क त में छोड़ दिया गया था। जैसे–गत्वान।

7. पालि में नाम धातु के रूप भी मिलते हैं।

8. उपसर्गों और नियातों के प्रयोग भी मिलते हैं। पटि, पति, परा, वि, स आदि अनेक उपसर्ग और च, न, वा, मा, हि आदि नियातों का प्रयोग हुआ है।

पालि–साहित्य

पालि में बुद्ध की वाणी का संग्रह त्रिपिटक–सुत पिटक, विनय पिटक और अभिधम्म पिटक–के नाम से हुआ। फिर त्रिपिटकों पर टीकाएँ अनुपिटक नाम से लिखी गई। फिर इन पिटकों के पृथक–पृथक अंग तैयार किये गये। विनय पिटक में तीन प्रकार के ग्रन्थ हैं। सुत पिटक के पाँच निकाय हैं– दीघ निकाय, संयुत निकाय, खुद्दक निकाय आदि। खुद्दक निकाय का 'धम्मपद' बहुत महत्त्वपूर्ण है। जातक साहित्य भी पालि भाषा की धरोहर है। अनुपटिक अधिकतर सिंहली विद्वानों ने लिखे हैं। इन अनुपिटकों की भाषा वैदिकी के निकट है। इसका रूप गद्य में भी विकसित होकर एकरूपता प्राप्त करता दिखाई देता है। मिलिन्दपन्हो का बुद्धघोष की अट्ठकथा में विकास हुआ। दीपवंश और महावंश नामक पालि ग्रन्थों पर संस्कृत का प्रभाव है।

इन सबको अतिरिक्त पालि में छन्द शास्त्र, व्याकरण, कोश ग्रन्थ लिखे गये। 'कच्चान व्याकरण' पालि का प्राचीन और महत्वपूर्ण व्याकरण है।

अशोक के शिलालेखों की भाषा

म्राट अशोक द्वारा खुदवाये शिलालेख भारत के प्रत्येक भाग में मिलते हैं। ये शिलालेख मूलतः मागधी में तैयार किये जाते थे फिर जिस प्रदेश में इन्हें लगाना होता था, वहाँ की भाषा में अनुवाद करके खुदवाया जाता था। इन शिलालेखों की भाषा भी

मागधी की अपेक्षा पालि ही है। अशोक ने ब्राह्मी तथा खरोष्ठी लिपि में शिलालेख खुदवाये थे। इनमें बीस स्तम्भ और चट्टानें विभिन्न स्थानों पर प्राप्त हुई हैं और अभी खुदाई में प्राप्त हो रहे हैं।

ध्वन्यात्मक अन्तर और स्थान–भेद को ध्यान में रखकर अशोक के शिलालेखों को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है। शाहबाज गढ़ी और मानसेरा के शिलालेख उत्तर–पश्चिमी भाषा के नमूने हैं। गिरनार का शिलालेख दक्षिणी–पश्चिमी जन–भाषा का प्रतीत होता है तथा धोली, जौगा, रामपुरवा, सारनाथ के शिलालेखों पर, उत्तर–पश्चिमी प्राकृत, पश्चिमी प्राकृत, मध्य–पूर्वी प्राकृत तथा पूर्वी प्राकृत, इन चार विभाषाओं का प्रभाव देखते हैं।

अशोक के शिलालेखों पर अंकित भाषा को कई लोग अशोकीय प्राकृत कहते हैं। इसका प्रयोग लाटों पर खुदवाने में हुआ है, अतः कुछ विद्वान् लाट–प्राकृत या लाट बोली भी कहते हैं। विद्वान पिशेल ने इसे लेण (लयन–गुफा) बोली कहा है। किन्तु इसका उचित नाम शिलालेखी प्राकृत ही है। अशोक के शिलालेखों से ईसा पूर्व तीसरी शती की भाषा का ज्ञान होता है। इन शिलालेखों में प्रत्येक क्षेत्र की भाषा भिन्न है। फ्रैंक और गुणे आदि विद्वानों ने शिलालेखी प्राकृत का अध्ययन करके पाया कि इनमें दो बोलियों का प्रयोग है, कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार तीन, चार या पाँच बोलियां इनमें प्रयुक्त हैं।

शिलालेखी प्राकृत विशेषताएँ

वैदिक भाषा छान्दस में प्रयोगों की स्वतन्त्रता थी। एक ही शब्द के अनेक रूप प्रचलित थे। अनेक प्रत्यय विभिन्न अर्थों के सूचक थे। इससे लगता है कि वेदों की रचना जन–भाषा में हुई थी। वेदों में किसी व्याकरण के नियमों का निर्वाह नहीं है। ऋषि केवल अर्थ बोध करना ही अपना कर्त्तव्य समझते थे। पाणिनी ने इस अव्यवस्था और भाषागत अनेकरूपता को समाप्त करने के लिए संस्कृत व्याकरण की रचना की, किन्तु वैदिकी भाषा जन–भाषा के रूप में स्वतन्त्र रूप में विकसित होती रही। उसकी मध्यदेशीय एवं मागधी बोली के आधार पर प्राकृत बनी। जिस पर संस्कृत की अपेक्षा उन जन–बोलियों का प्रभाव है जो अलग–अलग स्थानों पर विकसित हो रही थीं। अशोक के शिलालेख पालि प्राकृत के निकट हैं यद्यपि विभिन्न प्रदेशों की प्राकृतें उन्हें प्रभावित करती हैं। शिलालेखी प्राकृत की विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं–

1. शिलालेखों पर अंकित प्राकृत की ध्वनियाँ पालि के समान ही हैं। केवल ऊ मों में अन्तर है। पालि में केवल 'स' मिलता है जबकि शिलालेखों में इस दृष्टि से एकरूपता नहीं है। 'श, भा और स' तीनों ऊष्म मिलते हैं। दक्षिण–पश्चिमी भाषा के शिलालेखों में केवल 'स' मिलता है।
2. ध्वनि–विकास की दृष्टि से ध्वनियों का आगम, लोप, समीकरण, विषमीकरण, विपर्यय, तालव्य–भाव, मूर्धन्यीकरण, ह्रस्वीकरण, दीर्घीकरण, घोशीकरण आदि प्रवृत्तियाँ स्वरों और व्यंजनों में दिखाई देती हैं।
3. प्रतिपादिक व्यंजनान्त से हटकर स्वरान्त हो गये।
4. लिंग तीन ही हैं किन्तु वचनों में द्विवचन का प्रयोग नहीं है।
5. शब्द रूपों की संख्या संस्कृत और छान्दस से कम है।
6. क्रिया के दो पदों में आत्मनेपद का प्रयोग शिलालेखों में दिखाई नहीं देता है।
7. शेष विशेषताएँ पालि के समान ही हैं।

2. साहित्यिक प्राकृत भाषाएँ

प्राकृतों का उद्‌भव और नामकरण

पाँच–सौ ई.पू. से पहली शती ई.पू. तक पालि तथा अशोक के शिलालेखों की धर्म लिपियाँ साहित्य तथा राज–कार्य में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना चुकी थीं। उस समय भिन्न–भिन्न क्षेत्रों की बोलियाँ धर्म गुरुओं और साहित्यकारों के सहयोग से विकसित हो रही थीं। ये बोलियाँ ही आगे चलकर प्राकृतों के नाम से विख्यात हुईं। मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा का दूसरा युग पहली शती ई. से पाँचवीं शती ईस्वी तक माना जाता है, तब ये विभिन्न प्राकृत भाषाएँ विकसित होकर साहित्य में प्रयोग हुईं। 200 ई. पू. से 200 ई. तक का काल इस दृष्टि से संक्रान्ति काल है जिस पर पालि तथा शिलालेखी प्राकृत का अभाव है तथा बोलियों से प्राकृतों के विकास के लक्षण भी स्पष्ट होते हैं। इस संक्रान्ति काल की सामग्री को तीन रूपों में देख सकते हैं–(क) अश्वघोष के नाटक (100 ई.), धम्मपद की प्राकृत (200 ई.) और निय प्राकृत (तीसरी सदी)। ये सब प्राकृत दूसरे युग के अन्तर्गत ही सम्मिलित होती हैं।

'प्राकृत' नाम के सम्बन्ध में विभिन्न विचार व्यक्त किये जाते हैं। प्राकृत वैयाकरणों ने मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं की प्रकृति संस्कृत बताई है। इसलिए इस काल की भाषाओं को प्राकृत कहा गया है। क्योंकि ये भाषाएँ किसी न किसी प्रक ति का आधार लेकर विकसित हुई हैं। **'यत् प्रकृत्या जातं तत् प्राकृतम्'** के सिद्धान्त पर इनका नामकरण हुआ है। 'प्राकृत' संज्ञा प्राकृत वैयाकरणों की ही देन है। छान्दस में इन भाषाओं को देशी या अपभ्रंश भाषाओं के नाम से व्यक्त किया गया है। उत्तरकालीन संस्कृत ग्रन्थों में भी इन भाषाओं के लिए 'प्राकृत' शब्द का व्यवहार किया गया है। पिशेल के अनुसार 'प्राक्+कृत पहले की गयी' के आधार पर यह संस्कृत से भी पहले बनी, इसलिए प्राकृत कहलायी। हेमचन्द्र इसे संस्कृत से निकली मानते हैं। नमि साधु के अनुसार प्राकृत वह भाषा है जो सामान्य व्याकरण के नियमों से रहित है। एक भाषा का संस्कार करके उसे संस्कृत नाम दिया गया तथा प्राकृत वह भाषा है जो असंस्कृत थी तथा प्राकृत लोगों के व्यवहार की भाषा होने से प्राकृत कहलायी। वेद और संस्कृत काल की जनभाषा ही प्राकृत रूप में विकसित हुई। पालि काल के बाद यही लोक भाषा हुई।

संक्रान्तिकालीन प्राकृत भाषायें

भिन्न–भिन्न विद्वानों ने देश–काल के अनुसार प्राकृतों की संख्या भिन्न–भिन्न बताई। इसकी संख्या अठारह तक पहुँच चुकी थी। भाषा–वैज्ञानिक पद्धति के अभाव में परिचय होते हुए भी उस समय के विद्वान् इनका स्वरूप–निर्धारण नहीं कर सके। संक्राति के तीन रूप सामने आते हैं–

(क) अश्वघोष के नाटकों की भाषा–(100 ई. के आस–पास) मध्य एशिया में अश्वघोष के नाटकों की दो खण्डित प्रतियाँ मिली हैं जिनका सम्पादन जर्मन विद्वान ल्यूडर्स ने किया है। इनकी भाषा अशोक के शिलालेखों से मिलती–जुलती है। भौगोलिक दृष्टि से इनमें प्राचीन शौरसेनी प्राकृत, मागधी–प्राकृत और अर्ध–मागधी का प्रयोग किया गया है। भाषा संस्कृत से प्रभावित है। संस्कृत नाटकों में प्राकृत के प्रयोग का इनमें सुन्दर उदाहरण है।

(ख) धम्मपदीय भाषा–फ्रांसीसी विद्वान दुत्रुइल द रॉ को खोतान में खरोष्ठी लिपि में कुछ लेख (1892 ई.) मिले। ओल्डनबर्ग, सेनार्ट तथा भारतीय विद्वानों ने इन लेखों का उद्धार किया। इन लेखों को 'खरोष्ठी धम्मपद' भी कहा जाता है। इनमें पश्चिमोत्तर प्रदेश की भाषा है।

(ग) निय प्राकृत–चीनी तुर्किस्तान के निय–प्रदेश में सन् 1900 ई. से 1914 के बीच कुछ लेख मिले हैं। सन् 1937 ई. में टी. बरो ने इन लेखों का अध्ययन किया और इनकी भाषा को प्राकृत घोषित किया। इनका आधार भारत के पश्चिमी प्रदेश की भाषा रही है। यह भाषा तीसरी सदी की है जो ईरानी, मंगोली और तोखारी से प्रभावित है।

अन्य प्राकृतें

प्राकृत भाषा के सर्वप्रथम व्याकरणकार वररुचि ने अपने व्याकरण ग्रन्थ **'प्राकृत–प्रकाश'** में चार प्राकृत भाषाएँ बताई हैं–महाराष्ट्री, पैशाची, मागधी और शौरसैनी। इस ग्रन्थ के नौ परिच्छेदों में महाराष्ट्री प्राकृत का और शेष प्राकृतों का एक–एक अध्याय में व्याकरण प्रस्तुत किया गया है। इससे लगता है कि महाराष्ट्री प्राकृत अन्य प्राकृतों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण थी। हेमचन्द्र के अतिरिक्त अन्य वैयाकरणों ने भी वररुचि को ही आधार प्रस्तुत किया है। हेमचन्द ने उक्त चार प्रकार की प्राकृतों के अतिरिक्त तीन प्राकृतों का और व्याकरण प्रस्तुत किया है। **'हेम शब्दानुशासन'** में सात प्राकृत भाषाओं का उल्लेख है–(1) महाराष्ट्री प्राकृत (2) शौरसैनी (3) पैशाची (4) चूलिका–पैशाची (5) मागधी (6) आर्ष या अर्ध मागधी (7) अपभ्रंश।

कुछ अन्य विद्वानों ने अनेक प्राकृतों का नामोल्लेख किया है। डॉ. भोलानाथ तिवाड़ी ने अपने भाषा–विज्ञान ग्रन्थ में इनका विवरण और विवेचन इस प्रकार दिया है–''अन्य प्राकृत व्याकरणों एवं इतर स्रोतों से कुछ और प्राकृत भाषाओं के नाम भी मिलते हैं, जैसे वाल्हीकी, शाकारी, ढक्की, चाण्डाली, आभीरिकी अवंती, दाक्षिणात्या, भूतभाषा तथा गौड़ी आदि। इनमें प्रथम पाँच तो मागध ी के ही भौगोलिक या जातीय उपभेद हैं। आभीरिका शौरसैनी का जातीय रूप थी और अवन्ती उज्जैन के पास की, कदाचित् महाराष्ट्री से प्रभावित शौरसैनी थी। दाक्षिणात्या भी शौरसैनी का ही एक रूप है। हेमचन्द्र की चूलिका पैशाची को ही दण्डी ने भूतभाषा कहा है। (गलती से पैशाची का अर्थ पिशाच या भूत समझकर) कुछ लोगों ने लिखा है कि हेमचन्द ने पैशाची को ही 'चूलिका–पैशाची' कहा है, किन्तु वस्तुतः बात ऐसी नहीं है। हेमचन्द्र ने ये दोनों नाम अलग–अलग दिये हैं। दूसरी पहली की ही एक उप–बोली है, गौड़ी का अर्थ है गौड़ देश की। इसका आशय यह है कि यह मागधी का ही नाम है।

इसके अतिरिक्त पश्चिमी प्राकृत, कैकेय प्राकृत, ढक्क या माद्री प्राकृत, नागर प्राकृत, खस प्राकृत आदि की कल्पना भी भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने की है। इसका सीधा अर्थ हम यह ले सकते हैं कि छान्दस के परिनिष्ठित साहित्यिक स्वरूप धारण करने तक बहुत सम्भव है कि समस्त उत्तर भारत में सप्त–सिन्धु प्रदेश से मगध तक अनेक जन–बोलियाँ थोड़े–बहुत अन्तर के साथ विकसित होती रही हैं, जिनका नामोल्लेख मात्र उपलब्ध होता है। जो बोलियाँ साहित्यिक रूप प्राप्त कर चुकीं वे अवश्य प्रकाश में आईं। इनके सम्बन्ध में कुछ भी निष्कर्ष रूप में नहीं कहा जा सकता।

प्राकृतों के साथ 'गाथा' नाम का भी प्रचलन रहा है। गाथा की भाषा संस्कृत और प्राकृतों से प्रभावित है। बौद्धों और जैनों की बहुत सी रचनाएँ गाथा रूप में हैं–जातकमाला, ललित विस्तर, अवदान शतक आदि। मैक्समूलर इसे संस्कृत तथा पालि के बीच की भाषा मानते हैं। कुछ विद्वानों ने पश्चिमी प्राकृत की कल्पना की जो सिंध की भाषा थी तथा जिससे ब्राचड़ अपभ्रंश निकली। इसी से वर्तमान सिंधी भाषा का जन्म हुआ। इसी प्रकार पंजाबी और लहंदा क्षेत्र में भी कोई प्राकृत रही होगी जिसे कुछ विद्वानों ने यह 'केकय प्राकृत' कहा है। टक्क, मप्र, माद्री इसी की शाखाएँ हैं। राजस्थानी, गुजराती दोनों शौरसैनी प्राक त से प्रभावित हैं किन्तु इनका आधार नागर अपभ्रंश है। पहाड़ी भाषाओं के लिए 'खस अपभ्रंश' की कल्पना की गई। चम्बल और हिमालय के बीच पांचाली प्राकृत का भी उल्लेख मिलता है।

साहित्यिक प्राकृत

इन दर्जनों प्राकृतों में से भाषा–विज्ञान केवल पाँच प्राकृत भाषाओं को स्वीकार करता है–(1) शौरसेनी (2) मागधी (3) अर्ध मागधी (4) महाराष्ट्री और (5) पैशाची।

प्राकृत भाषाओं की सामान्य विशेषताएँ

इन पाँचों प्राकृतों की अलग–अलग विशेषताओं की चर्चा बाद में की जाएगी, पहले हम इन समस्त प्राकृत भाषाओं की सामान्य विशेषताओं का उल्लेख करेंगे जो सब में समान रूप से मिलती हैं–

ध्वनि–तत्व

1. प्राकृत भाषाओं की अधिकतर ध्वनियाँ पालि के निकट हैं।
2. प्राकृत भाषा में ऋ, ऐ, औ एवं अः वर्ण नहीं पाये जाते।
3. प्राकृत भाषा में विसर्ग (:) नहीं होता उसके स्थान पर ओ हो जाता है। जैसे रामः>रामो।
4. इनमें हस्व ऍ तथा ओ एवं ल तथा ल्ह का प्रयोग प्रचलित था।
5. ऐ और ऋ तथा ऌ श्लुप्त हो गये थे। लिखने में 'ऋ' का प्रयोग था किन्तु ध्वनि समाप्त हो गई थी। 'ऋ' का उच्चारण 'रि' होने लगा था, अथवा उसका विकास 'अ इ उ और ए' में उपलब्ध होता है जैसे–ऋणम्>रिणं, ऋषि>रिसि, तष्णम्>तणं मृतः>म ओ।
6. पालि में केवल 'स' ध्वनि है जबकि प्राकृतों में श, षा, स तीनों ऊष्म ध्वनियाँ हैं। बाद में ष, श में बदलता दिखाई देता है।
7. मागधी में 'र' ध्वनि के स्थान पर 'ल' ध्वनि है। इसका विपर्यय भी मिलता है र का ल और ल का र।
8. आद्य 'य' का ज हो जाता है–यज्ञ>जज्ञ। मागधी में ज का य हो जाता है।
9. आधुनिक काल के संघर्षी व्यंजन ग, ज का प्रयोग आश्चर्यजनक है।
10. 'न' ध्वनि का विकास 'ण' में हुआ। नगरम्>णअर।
11. भाषाओं में ड् और ढ् ध्वनियाँ भी हैं।
12. पालि–काल में ध्वनि–परिवर्तन की लोप, समीकरण, स्वर–भक्ति आदि प्रवृत्तियाँ जारी रहीं। महाराष्ट्री और मागधी में परिवर्तन हुए।
13. स्वरों के बीच का अल्प प्राण लुप्त हो गया और महाप्राण का 'ह' हो गया जैसे शची>सई, सागर>साअर, रिपु>रिउ, मुखम्>मुँह, मेखला>मेहला, मेघ>मेहो, राधा>राहा।
14. अपभ्रंश और शौरसेनी प्राकृत में सघोष अल्प प्राण के लोप के पश्चात् 'य' श्रुति का आगम भी विशेषतः दृष्टव्य है–नागरम्>नयरं, मृगांकः>मयको, मदनः>मयणो।
15. विसर्ग के स्थान पर ए, ओ, म का व, स्पर्श घोष का अघोष और अघोष का घोष होने की प्रवृत्ति प्राकृत में है जैसे–मृतः>म ओ, भ्रमर>भँवर, दृष्टम्>दिट्ठम आदि।

रूप–तत्व

1. व्यंजनांत शब्द लुप्त होकर स्वरान्त हो गये, राजन्>राआ।

2. शब्दों रूपों में क्षय की प्रवृत्ति जो छान्दस में ही प्रारम्भ हो गई थी, अब स्पष्ट दिखाई देने लगी। पुल्लिंग, कर्ता, बहुवचन और कर्म, बहुवचन के रूप में समान होने लगे। जैसे सव्वे (कर्ता), सब्बे (कर्म)

3. द्विवचन का प्रयोग समाप्त हो गया।

4. मध्यकाल तक संस्कृत की तरह तीनों लिंग मिलते हैं। केवल लिंग व्यत्यय के उदाहरण अवश्य मिलते हैं।

5. पालि की तरह प्राकृत में भी आत्मनेपद का प्रयोग नहीं मिलता।

6. संज्ञा शब्दों के साथ सर्वनामों में भी विभक्ति–प्रत्ययों का प्रयोग होने लगा। जैसे–देवे>देवेम्मि, गुरो>गुरुत्तो।

7. शब्द रूप कम हो रहे थे, इसलिए भाषा सरल होती जा रही थी।

8. भाषा संयोगात्मकता से वियोगात्मकता की ओर तेज गति से बढ़ रही थी। कारक और क्रियाओं का सम्बन्ध व्यक्त करने के लिए क्रियाओं के साथ कारक–व्यय एवं कृदन्त क्रियाओं का प्रयोग भी इस काल में प्रारम्भ हो गया। इसी प्रवृत्ति के फलस्वरूप आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में अनुसर्गों और परसर्गों का विकास हुआ। प्राकृतों में यह विकास विशेष उल्लेखनीय है जो अपभ्रंशों में तो धड़ल्ले के साथ आगे बढ़ा।

9. स्वराघात पालि की तरह था और अर्थ–परिवर्तन भी हो रहा था।

10. द्रविड़ शब्दों के भी तद्भव शब्द बनाये जा रहे थे। देशज शब्दों का विकास और प्रयोग प्राकृतों में खूब हो रहा था। हेमचन्द्र ने इसलिए 'देशी नाम–माला' की रचना की।

धातु रूप

1. प्राकृतों में वैदिकी तथा संस्कृत के 'लङ्, लिट् तथा लुङ' प्रयोग बन्द हो गये थे। 'लेट्' लकार बहुत पहले ही संस्कृत से ही बन्द हो गया था। डॉ. चैटर्जी मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं के काल रूपों और भाव–रूपों का विवेचन करते हुए लिखते हैं–"आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के अधिकांश सूक्ष्म काल तथा रूप धीरे–धीरे नष्ट हो गये और अन्त में द्वितीय म. भा. आ. अवस्था में केवल कर्तरि वर्तमान, एक कर्मणि वर्तमान, एक भविष्यत् (निर्देशक रूप में), एक अनुज्ञार्थ तथा एक विधिलिङ् वर्तमान रूप प्रचलित रहे साथ ही कुछ विभक्ति साधित भूत रूप भी बचे रहे, यथा भूतकाल का निर्देश साधारणतया 'त–इत, (या न) साधित कर्मणि कृदन्त या निष्ठा द्वारा होने लगा। 'लङ्', लुङ्, लिट के स्थान पर म. भा. आ. में भूतकाल भावे या कर्मणि कृदन्त 'गत' लगा कर बनाया जाने लगा।

2. मिथ्या सादृश्य के आधार पर सुबन्त और तिङन्त रूप कम होकर भाषा को सरल बनाने में सहायक हो रहे थे।

इस प्रकार सम्मिलित रूप से प्राकृत भाषाओं में उक्त विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं।

प्राकृत भाषाओं की अलग–अलग विशेषताएँ

साहित्यिक प्राकृतों के रूप में भाषा–विज्ञान ने जिन पाँच प्राकृतों को स्वीकार किया है, उनका अलग–अलग परिचय तथा ध्वनिगत एवं रूपगत विशेषताओं का निरूपण निम्न प्रकार प्रस्तुत है–

(1) शौरसेनी प्राकृत

मध्यप्रदेश में बोली जाने वाली भाषा शौरसेनी प्राकृत कहलायी। मथुरा और शूरसेन प्रदेश के आसपास की स्थानीय बोली से इसका विकास हुआ है। इसका नाम भी शूरसेन प्रदेश के आधार पर शौरसेनी पड़ा। मध्यप्रदेश की भाषा होने के कारण यह परिनिष्ठिता और प्रभावशाली भाषा थी। इस पर उदीच्या बोली का पर्याप्त प्रभाव दिखाई देता है। साथ ही कुछ विशेषताएँ मागध ी भाषा की भी इसमें हैं। शौरसेनी का प्रयोग प्रायः संस्कृत नाटकों में हीन पात्रों और नारी पात्रों द्वारा किया गया है। कर्पूरमंजरी नाटक और अश्वघोष के नाटकों का गद्य शौरसेनी में ही प्राप्त है। अश्वघोष के तीन नाटकों में से एक प्रकरण रूपक सम्पूर्ण रूप से उपलब्ध है जिसका नाम शारीपुत्र प्रकरण है। लूडर्स महोदय ने इन नाटकों की खोज की थी। इस प्रकरण में गौतम और उनके शिष्यों के अतिरिक्त शेष पात्र प्राकृत कहते हैं किन्तु प्रसिद्ध भाषा–विज्ञ डॉ. बाबूराम सक्सेना ने इसे शौरसेनी प्राकृत ही कहा है। कुछ विद्वान शौरसेनी प्राकृत का उद्भव पालि भाषा से मानते हैं और शौरसेनी का विकसित रूप महाराष्ट्री को बताते हैं। इसका प्रयोग दिगम्बर जैनियों के ग्रन्थों में हुआ है। जैन शौरसेनी की भाषा कुछ भिन्न है। अवन्ती और आभीरी इसी के रूप हैं।

ध्वनिगत–विशेषताएँ

(1) शौरसेनी में पालि की सभी ध्वनियाँ हैं। स्वरों में ऐ, औ 'ऋ' ध्वनियाँ नहीं हैं। व्यंजनों में श, ष, स के स्थान पर केवल स है। न और य के स्थान पर ण और ज मिलता है। जैसे–एषः>एसो, भानवः>भाणओ, यथा>जघा।

(2) शौरसेनी के अनादि में वर्तमान असंयुक्त त तथा थ के द और ध हो जाते हैं। जैसे–गच्छति>गच्छदि, यथा>जघा।

(3) आदि में त, थ हो तो परिवर्तन नहीं होता, तस्य >तस्स।

(4) त और थ संयुक्त होने पर द, ध, नहीं होते, जैसे–शकुन्तले >सउन्तले।

(5) कहीं–कहीं थ का थ ही रह जाता है या ह हो जाता है। कथम्>कहं।

(6) शौरसेनी में द और ध ध्वनियाँ सुरक्षित हैं किन्तु अनेक स्थानों पर इनमें विकार है यथा–वधूः>बहू, नदी>नई।

(7) क्ष के स्थान पर क्ख मिलता है। यथा–इक्षु>इक्खु।

(8) कहीं–कहीं शौरसेनी में ज्ञ के स्थान पर 'ण' मिलता है। सर्वज्ञ>सव्वणो।

रूपगत विशेषताएँ

1. रूपों की दृष्टि से शौरसेनी का झुकाव संस्कृत की ओर है।
2. शौरसेनी में अदन्त शब्दों पर पंचमी एक वचन 'डसि' के स्थान पर आदो और आदु न होकर केवल दो होता है। यथा–देवादो।

3. स्त्रीलिंग में 'जस्' (प्रथमा बहुवचन) का 'उत्' आदेश नहीं होता। जैसे प्राकृत–मालाओ, शौरसेनी–माला।

4. नपुंसकलिंग प्रथमा और द्वितीया बहुवचन में जस् और शस् के स्थान पर 'णि' आदेश होता है तथा पूर्व स्वर दीर्घ हो जाता है। यथा–घणाणि, वणाणि।

5. शौरसेनी में केवल परस्मैपद के प्रयोग ही मिलते हैं। आत्मनेपद का लोप–सा ही है।

6. तिङ् प्रत्ययों के आने पर 'भू' धातु 'भो' हो जाती है यथा–भोमि।

7. विधि–रूपों में मागधी, अर्धमागधी की तरह 'एंज' न लगा कर संस्कृत का आधार लिया गया है। जैसे–वर्तेत>वट्टे।

8. शौरसेनी में संस्कृत के कर्तृवाच्य के सूचक 'य' प्रत्यय के स्थान पर 'इअ' हो जाता है। जैसे–गम्यते>गमीअदि।

(2) मागधी प्राकृत

छान्दस से विकसित प्राच्या बोली का यह साहित्यिक रूप है जो मगध के आसपास की भाषा थी। भगवान बुद्ध ने अपने उपदेशों के लिए इसी को चुना था। वर्तमान अवध से बंगाल तक का क्षेत्र इसी के अन्तर्गत आता है। वररूचि इसे शौरसेनी से ही विकसित मानते हैं। लंका में पालि को भी मागधी कहते हैं। मागधी में कोई स्वतंत्र रचना नहीं मिलती। संस्कृत नाटकों में है। इसे गौड़ी भी कहते हैं। बाहलीकी, ढक्की, चांडाली आदि इसके जातीय रूप हैं। ध्वनि–विकार मागधी प्राकृत में सर्वाधिक हुये हैं।

ध्वनिगत विशेषताएँ1.

1 असंयुक्त स, ष, व श का 'श' हो जाता है किन्तु संयुक्त होने पर 'स' ही होता है। जैसे–हस्ती>हस्ती>कष्टम्>कस्टं, हंस>हंशे, पुरुष>पुलिशे, सारस>शालश।

2. मागधी में र के स्थान पर ल हो जाता है। राजा>लाजा।

3. इसमें 'स्थ' और 'र्थ' के स्थान पर 'स्त' हो जाता है। जैसे अर्थवती>अस्तवदी, सार्थवाह>शस्तवाहे।

4. ज, द्य और य के स्थान पर मागधी में 'य' हो जाता है। जैसे जनपदः>यणपदे, मद्यम>मय्य, याति>यादि।

5. 'क्ष' के स्थान पर मागधी में 'स्क' मिलता है। यथा–पक्ष>पस्के।

6. 'त' के स्थान पर 'द' होता है। जैसे–गच्छति>गच्छदि।

7. मागधी में 'ट' और 'स' से युक्त ठ (ष्ठ) के स्थान पर 'स्ट' हो जाता है। जैसे–पट्ट>पस्टे, सुष्ठु>शुस्टु।

8. अनादि में 'छ' के स्थान परा 'श्च' का आदेश होता है, गच्छ>गश्च।

9. न्य, ण्य; ज्ञ, जं संयुक्ताक्षरों के स्थान पर 'जं' ध्वनि मिलती है। यथा–अभिमन्यु>अहिमंजु, पुण्याहम्>पुंहं।

10. सभी प्राकृतों के समान मागधी में भी समीकरण की प्रवृत्ति है किन्तु मागधी में यदि पूर्ववर्ती ऊष्म ध्वनि हो तो समीकरण नहीं होता, यथा हस्त>हस्त, शुष्क>शुस्क।

रूपगत विशेषताएँ

1. मागधी में कर्ता कारक के प्रत्यय 'अः' के स्थान पर 'ए' मिलता है। जैसे–सः>से, देवः>देव।

2. क्त प्रत्यायान्त शब्दों में प्रथमा विभक्ति के एक वचन में अः का 'उ' भी होता है। यथा–चलितः>चलिदु।

3. षाष्ठी में 'स्य' के स्थान पर 'अह' का प्रयोग होता है। रामस्य >लामाह।

4. मागधी में षष्ठी का बहुवचन 'आम्' भी विकल्प रूप में 'आह' हो जाता है। जैसे–स्वजनानाम्>शअणाह, अस्माकम्>अम्हाहं।

5. सप्तमी में 'इ' के स्थान पर 'अहि' मिलता है। प्रवहणि>पवहणाहि।

6. इसमें 'अहम् और वयम्' के स्थान पर 'हगे' आदेश होता है।

7. मागधी में 'स्था' धातु के 'तिष्ठ' के स्थान पर 'चिष्ठ' मिलता है। जैसे–चिष्ठदि, चिष्ठदे।

8. मागधी में 'क्त्वा' प्रत्यय को 'दाणि' आदेश होता है। जैसे–कृत्वा आगतः के करिदाणि आअडे।

9. मागधी में 'ज', 'घ' और 'य' के स्थान में य आदेश होता है। जनपद–जणवेद ज के स्थान पर य, व, प के स्थान पर व हुआ है। जानाति–याणादि ज के स्थान पर य, व, ण का त हुआ है।

(3) अर्ध–मागधी प्राकृत

मागधी और शौरसेनी के बीच का कौशल और बनारस प्रदेश अर्ध–मागधी का क्षेत्र रहा है। इसे पश्चिमी प्राच्या भी कहा जाता है। भगवान महावीर और गौतमबुद्ध की मातृभाषा होने के कारण जैन और बौद्धों की यह साहित्यिक भाषा बनी। बौद्धों ने तो मागधी और फिर पालि को अपनी धर्म भाषा बना लिया। किन्तु जैनियों के लिए यह आर्ष, आर्षी और छान्दस से भी पुरानी आदि भाषा के रूप में निधि बन गई है। अर्ध–मागधी में मागधी और महाराष्ट्री प्राकृत तत्व देखने को मिलते हैं। कुछ प्राकृत वैयाकरण इसे शौरसेनी और मागधी का मिश्रित रूप बताते हैं।

डॉ. मनमोहन घोष ने शोधपूर्वक यह निष्कर्ष निकाला है कि शौरसेनी का विकसित रूप ही महाराष्ट्री है, न कि महाराष्ट्र प्रदेश की कोई भिन्न प्राकृत। अर्धमागधी पर महाराष्ट्री प्राकृत का प्रभाव औपपातिक–सूत्र वृत्तौ तथा भगवती–सूत्रवृत्तौ के अनुसार भी स्पष्ट है। संक्षिप्त में सारे मानक ग्रंथ में तो महाराष्ट्री के लिए प्राकृत शब्द के स्थान पर 'महाराष्ट्री मिश्रार्ध मागधी' लिखा है। मलयगिरि ने मागधी का प्रभाव मानते हुये अर्ध–मागधी का स्वतंत्र रूप से वर्णन किया है।

सर आ. जी. भण्डारक अर्द्धमागधी का उत्पत्ति समय द्वितीय शताब्दी मानते हैं। इनके मतानुसार कोई भी साहित्यिक प्राकृत भाषा ईसा की प्रथम व द्वितीय शताब्दी से पहले की नहीं है। इसका अनुसरण कर डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी ने अपनी पुस्तक में अर्द्धमागधी का समय ईस्वीय तृतीय शताब्दी स्थिर कर दिया है।

(अ) हार्नले ने समस्त प्राकृत बोलियों को दो भागों में बाँटा है। एक वर्ग को शोरसेनी प्राकृत व दूसरे वर्ग को मागध ी प्राकृत कहा है।

(ब) ग्रियर्सन के अनुसार शनैः शनैः ये आपस में मिलीं और इनसे तीसरी प्राकृत उत्पन्न हुई, जिसे अर्द्ध मागधी कहा गया है।

(स) मार्कण्डेय ने इस भाषा के विषय में कहा है कि शौरसेनी के निकट होने के कारण मागधी ही अर्द्धमागधी है।

इससे यह ज्ञात होता है कि अर्ध–मागधी पर कुछ विद्वान् मागधी का, कुछ महाराष्ट्री का और कुछ शौरसेनी का प्रभाव मानते हैं। हम कह सकते हैं कि अर्ध–मागधी ने मागधी और मध्य देश की भाषा से कुछ ग्रहण किया, जिसे जैनाचार्यों ने उच्चतम साहित्य से विभूषित किया। समस्त जैन–धार्मिक साहित्य अर्ध मागधी में लिखा गया है। शौरसेनी के साहित्यिक रूप ग्रहण करने से पूर्व ही अर्ध–मागधी में पर्याप्त ग्रन्थ लिखे जा चुके थे। इसमें गद्य–पद्य दोनों रूपों में साहित्य मिलता है। साहित्यिक नाटकों में अर्ध–मागधी का प्रयोग किया गया है। इसका प्राचीनतम रूप अश्वघोष के नाटकों में मिलता है। साहित्य दर्पणकार ने इसे चरों, सेठों और राजपुत्रों की भाषा बताया है। मुद्राराक्षस और प्रबंध चन्द्रोदय में इसका प्रयोग मिलता है। कुछ विद्वान अशोक के शिलालेखों में भी इसी भाषा का अस्तित्व मानते हैं। जैन–कवियों की महाराष्ट्री और शौरसेनी–भाषा पर भी इसका प्रभाव है।

ध्वनिगत विशेषताएँ

1. इसके स्वर और व्यंजन मागधी तथा शौरसेनी के समान ही हैं। इसमें श और ष के स्थान पर 'स' मिलता है। जैसे–श्रावकः>सावके।

2. अर्ध–मागधी में दन्त्य ध्वनियाँ मूर्धन्य हो गईं। जैसे–स्थित>टिय, मृतः>मडे, कृतः>कडे।

3. च वर्ग के स्थान पर त वर्ग का प्रयोग मिलता है। जैसे–चिकित्सा>तेइच्छा।

4. अन्य प्राकृतों के दो स्वरों के बीच का स्पर्श लुप्त हो जाता है, किन्तु अर्ध–मागधी में 'य' मिलता है। यथा–सागर>सायर। कृतः>कय।

5. गद्य में इसका मागधी प्रयोग मिलता है। पद्य में शौरसेनी के समान 'अ' का 'ओ' हो जाता है।

6. अर्ध–मागधी में 'र' का 'ल' नहीं होता। जैसे–कला>कला, दारक>दारय।

7. ऋकारान्त धातुओं में अन्त में 'क्त' प्रत्यय के 'त' स्थान पर 'ड' हो जाता है। यथा–मृतः>मड, कृतः>कड।

8. 'क' के स्थान पर 'ग' का आगम होता है। श्रावकः>सावगे।

9. दन्त्य ध्वनियाँ मूर्धन्य हो गयी हैं जैसे स्थित>ठिप, कृत्वा>कट्टु।

10. दो स्वरों के बीच आने वाले असंयुक्त 'च' और 'ज' के स्थान पर 'त्' और 'य' ही होता है। जैसे णारात>नाराच, पावतण>प्रवचन इत्यादि, पूजा>पूता, पूया इत्यादि।

रूपगत विशेषतायें :

1. कर्त्ता कारक एक वचन में शौरसेनी और महाराष्ट्री के समान अन्त में 'ओ' तथा मागधी के समान 'ए' हो जाता है। जैसे श्रावकः>सावके / सावको।

2. सप्तमी एक वचन में 'स्मिन' के स्थान पर 'अंसि' प्रयोग मिलता है। जैसे–लोकस्मिन>लोगसि / लोयंसि।

3. कम्म तथा धम्म के तृतीया एक वचन में 'उणा' प्रत्यय का प्रयोग मिलता है। जैसे–कम्मुणा, धम्मुणा।

4. उपसर्गों में कहीं अन्त्य वर्ण तथा कहीं अन्त्य स्वर का लोप देखा जाता है। जैसे–इति>ई, प्रति>पत।

5. 'त्वा' और ल्यप् के स्थान पर अर्ध–मागधी में क्रमशः 'इतु और टटु' का प्रयोग होता है। जैसे श्रुत्वा>सुणित्तु, कृत्वा>कट्टु।

6. डॉ. उदयनारायण तिवाड़ी ने अर्ध–मागधी में पूर्वकालिक क्रिया के लिए 'त्ता' और 'च्या' प्रत्ययों के प्रयोग का उल्लेख किया है।

(4) महाराष्ट्री प्राकृत

इसका मूल स्थान महाराष्ट्र है। प्रो. सुधीर कुमार गुप्त महोदय ने इसी प्राकृत से वर्तमान मराठी का विकास माना है। कुछ विद्वान इसे पूरे भारत की भाषा मानते हैं। डॉ. मनमोहन घोष इसे शौरसेनी से बाद की और उसी का विकसित रूप मानते हैं। इसका विकास शौरसेन प्रदेश में न होकर उसी प्रकार महाराष्ट्र में हुआ जैसे खड़ी बोली हिन्दी का जन्म तो उत्तर में हुआ किन्तु दक्खणी हिन्दी या रेख्ता के नाम से दक्षिण में विकसित होती रही। तत्कालीन भारत में शौरसेनी के इस विकसित रूप महाराष्ट्री प्राकृत को समस्त भारत की साहित्यिक भाषा बनने का गौरव प्राप्त था। ऐसा मत डॉ. घोष का है। डॉ. सुकुमार सेन भी ऐसा ही मानते हैं। एक प्रकार से यह भाषा शौरसेनी प्राकृत और शौरसेनी अपभ्रंश के बीच की भाषा हो सकती है।

मध्यकाल में महाराष्ट्री प्राकृत अन्य प्राकृतों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण स्थान की अधिकारिणी रही है। प्राकृत वैयाकरणों ने महाराष्ट्री को ही आदर्श भाषा मानकर प्राकृत भाषाओं का विवेचन किया है। यही नहीं, समय–समय पर महाराष्ट्री प्राकृत के लिए केवल 'प्राकृत' शब्द का ही प्रयोग किया है तथा अन्य भाषाओं को शौरसेनी, मागधी आदि नामों से प्रकट किया है। नाटकों में महाराष्ट्री प्राकृत का प्रयोग उच्च वर्ग के पात्रों से ही कराया गया है। संस्कृत नाटकों में गद्य के लिए शौरसेनी प्राकृत और पद्य के लिए महाराष्ट्री प्राकृत का प्रयोग हुआ है। अन्य भाषाओं में स्वतंत्र साहित्य का अभाव है जबकि महाराष्ट्री में अपना स्वतंत्र साहित्य है। गाहा सतसई (हाल, रावण, अवरसेन) बजजालग्ग (जय बल्लभ) तथा अन्य अमर कृतियाँ इसी प्राकृत में हैं। इस भाषा में इसी का प्रयोग किया गया है। पद्य के साथ इसमें गद्य भी मिलता है। श्वेताम्बर जैनों ने इस भाषा में नीतिकाव्य, खण्डकाव्य, तथा महाकाव्य रचे गये हैं। कालिदास और हर्ष के नाटकों में, गीतों से धार्मिक गद्य–ग्रन्थों की रचना की, जिसे विद्वान याकोबी ने जैन–महाराष्ट्री की संज्ञा दी है। इसमें कुछ बौद्ध ग्रन्थ भी उपलब्ध हैं।

अर्द्धमागधी के आगम ग्रन्थों के अतिरिक्त चारित्र, कथा, दर्शन, तर्क, ज्योतिष, भूगोल आदि विषयक प्राकृत का विशाल साहित्य है। इसमें महाराष्ट्री के बहुत लक्षण पाये जाते हैं, फिर भी अर्द्धमागधी का बहुत कुछ प्रभाव देखा जाता है।

महाराष्ट्री के कतिपय ग्रन्थ प्राचीन है। यह द्वितीय स्तर के प्रथम युग के प्राकृतों में स्थान पा सकती है। पयन्ना ग्रन्थ, निर्युक्तियाँ, पउमचरिउ, उपदेशमाला ग्रन्थ प्रथम युग की जैन महाराष्ट्री के उदाहरण हैं।

आगम ग्रन्थों पर रचे गये बृहत्कल्पभाष्य, व्यवहारसूत्रभाष्य, विशेषावश्यक भाष्य एवं निशीथ चूर्णी में इस भाषा का प्रयोग हुआ है, समराइच्चकहा, कुवलयमाला, वसुदेवहिण्डी, पउमचरिउ में भी इसी भाषा का प्रयोग है।

संस्कृत को महाराष्ट्री प्राकृत की प्रकृति मानकर वैयाकरणों ने इसकी निम्नलिखित विशेषताएँ बताई हैं–

ध्वनिगत विशेषताएँ

1. शौरसेनी प्राकृत की समस्त स्वर और व्यंजन ध्वनियाँ इसमें प्राप्त हैं।
2. स्वर मध्यस्थ तथा असंयुक्त अल्पप्राण अघोष, अल्पप्राण सघोष (क, त, प, ग, द, ब) तथा 'य' का इसमें लोप हो जाता है। यथा लोकः>लोओ, मुकुलम्>मउलो, शची>सई, सूची>सूई, मदन>मऊणों, मृगांकः>मअंको, सागरः>पाअर आदि।
3. महाराष्ट्री प्राकत में महाप्राण स्पर्श इसी प्रकार स्वरों के मध्य में हो, अनादि हो तथा असंयुक्त हो तो वह 'ह' हो जाता है। जैसे–मखः>महो, मुखम्>मुह, नाथः>नाहो, गाथा>गाहा, मेघः>मेहो, सभा>साहा, वधिर>बहिरो, शफरी>सहरी।
4. 'क' के स्थान पर अनेक स्थान पर 'ग' होता है।
5. महाराष्ट्री प्राकृत में स्वर मध्यस्थ ट, ठ, ड क्रमशः ड, ढ, ल हो जाते हैं। जैसे–भटः>भडा, मठः>मढो, गरूड़ः>गरूलो।
6. लुप्त व्यंजनों के स्थान पर 'य्' होता है।
7. 'स' पर अनुस्वार हो और उसके आगे 'ह' हो तो ह का घ हो जाता है। जैसे–सिंह>सिंघो, संहार>संघारो।
8. प, ब के स्थान पर महाराष्ट्री में 'ब' हो जाता है। जैसे–शपथः>सवहो, शापः>सावो, अलाबू>अलावू।
9. महाराष्ट्री में ऋ के स्थान पर 'अ, इ, उ' तीनों मिलते हैं।, जैसे–घृतम्>घअं, कृपा>किवा, ऋतुः>उदु।
10. ऊष्म श, स का इसमें 'ह' हो जाता है। यथा–पाषाण>पाहाण।
11. शब्दों के आदि व मध्य में 'ण' की जगह 'न' अर्धमागधी की तरह होता है।

रूपगत विशेषतायें :

1. महाराष्ट्री प्राकृत में लिंग तथा वचन दो हैं। कारकों में चतुर्थी के अतिरिक्त सभी का प्रयोग होता है। चतुर्थी के स्थान पर षष्ठी का प्रयोग मिलता है।
2. प्रथमा विभक्ति में एक वचन 'ओ' मिलता है। यथा–देवनो, नभो।
3. अपादान एक वचन में 'अहि' विभक्ति प्रत्यय का विकास महाराष्ट्री प्राकृत की मौलिक विशेषता है। यथा–दुरात्>दुराहि, भर्तुः>भत्ताराहि।
4. अधिकरण कारक के एक वचन के रूप 'स्मि' अथवा 'ए' विभक्ति प्रत्यय से बनते हैं। यथा–देवे>देवेम्मि, गिरौ>गिरिम्मि, भर्तरि>भात्तारे।
5. आत्मन् का विकास शौरसेनी में 'अत्ता' के रूप में हुआ किन्तु महाराष्ट्री में 'अप्पा' के रूप में हुआ।
6. महाराष्ट्री में धातुओं का गणभेद नहीं हैं। अदन्त धातुओं के अतिरिक्त शेष धातुओं में आत्मनेपद–परस्मैपद का भेद नहीं है।
7. 'कृ' धातु रूपों पर सीधा छान्दस का प्रभाव दिखाई देता है। कृणोति>कुणई (संस्कृत–करोति)
8. कर्मवाच्य में शौरसेनी में जहाँ 'ए' मिलता है, महाराष्ट्री में 'इज्ज' मिलता है। गम्यते>गमिज्जइ।
9. पूर्वकालिक क्रिया बनाने के लिए 'क्त्वा' के स्थान पर 'ऊण' प्रत्यय लगाया जाता है। जैसे–पृष्ट्वा>पुच्छिऊण, कृत्वा>काऊण।
10. 'इदमर्थ' में प्रयुक्त प्रत्ययों के स्थान पर महाराष्ट्री में 'केर' शब्द का प्रयोग मिलता है। युष्मदीयः>तुम्हकेरो।

(5) पैशाची प्राकृत :

यह मूलतः किस क्षेत्र की भाषा थी, विद्वानों में इस सम्बन्ध में मतभेद हैं। प्राचीन संस्कृत साहित्य में पिशाच–प्रदेश का अनेक बार उल्लेख हुआ है। पैशाचिका, पैशाचिकी, ग्राम्य भाषा, भूत–भाषा, भूतवचन आदि इसके ही नाम हैं। महाभारत में पिशाच जाति का वर्णन है। **ग्रियर्सन** ने कश्मीर प्रदेश में बोली जाने वाली प्राचीन भाषा का रूप माना है जो दरद भाषाओं से प्रभावित है। **राजशेखर** ने 'काव्य–मीमांसा' में मरुभूमि, ढक्क और भादानक प्रदेश को पैशाची भाषा–भाषी बताया है। प्राचीन आचार्यों ने इसे भूतभाषा कहा। **हार्नली** ने द्रविड़ों द्वारा प्रयुक्त प्राकृत को पैशाची माना है। **पुरुषोत्तम** देव ने प्राकृतानुशासन में संस्कृत और शौरसेनी का विकृत रूप ही इसे बताया है। **वररुचि** ने इसे संस्कृत पर आधारित घोषित किया है जिसमें साहित्य नहीं के बराबर है। **हम्मीर मदन** और कुछ नाटकों में कुछ पात्र इसका प्रयोग करते हैं। **हेमचन्द्र** ने 'चूलिका–पैशाची' का ही उल्लेख किया है। **मार्कण्डेय** ने इसके तीन भेद माने हैं–कैकय, पांचाल और शौरसेनी। 'प्राकृत सर्वस्व' में देश काल के अनुसार पैशाची प्राकृत के ग्यारह भेद स्वीकार किये गये हैं। **लेसेन** ने मागध, ब्राचड और पौशाचिकी तीन भेद बताये हैं। अब तक यह भी सम्भावना है कि इस भाषा में साहित्य की सम्पन्नता रही होगी तथा इसकी अनेक विभाषाएँ भी होंगी, आज इसका साहित्य उपलब्ध नहीं है। अतः कुछ भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। विद्वानों का अनुमान है कि संस्कृत में अनूदित गुणाढ्य की 'वृहत् कथा मंजरी' मूलतः पैशाची भाषा में ही लिखी गई थी जो आज उपलब्ध नहीं है।

ध्वनिगत विशेषताएँ :

1. दो स्वरों के मध्य आने वाले सघोष स्पर्श इसमें अघोष हो गये। यथा गगन>गकन, मेघः>मेखो, राजा>राचा, माधव>माथवो।
2. पैशाची में 'ल' के स्थान पर 'र' और 'र' के स्थान पर 'ल' मिलता है–रुद्र>लुद्द, कुमार>कुमाल।
3. संयुक्त व्यंजनों को स्वर भक्ति के कारण सस्वर करने की प्रवृत्ति इस प्राकृत में है। यथा–स्नानम्>सनानं, स्नेहः>सनेहो, कष्टं>कसट।
4. पैशाची में 'ल' के स्थान पर ल का आदेश होता है। यह बात प्राकृत व्याकरण में कही गई है। यथा–कमलम्>कमल।
5. इसमें 'श', 'ष' के स्थान पर 'स' या कहीं 'श' मिलता है। यथा–शोभते >सोभति, कष्टम्>कसटं, शशि>शशि, विषयः >विसयो।
6. पैशाची में 'ण' के स्थान पर 'न' हो जाता है। गुणगणः>गुनगनो।

रूपगत विशेषतायें :

1. पैशाची प्राकृत में अकारान्त शब्दों के साथ पंचमी एक–वचन के 'ड सि' के स्थान पर 'आतो' और 'आतु' का आदेश होता है। यथा तुमातो, तुमातु (त्वत) ममातो>ममातु (मत्)।
2. इसमें 'तेन' और 'अनेन' दोनों के स्थान पर केवल 'नेन' मिलता है तथा स्त्रीलिंग में 'नाए' मिलता है।
3. पैशाची में कर्मवाच्य में 'इय्य' का आदेश होता है। यथा–रम्यते>रमिय्यते, पठ्यते>पठिय्यते।
4. इस प्राकृत में 'क्त्वा' के स्थान पर 'तून' हो जाता है। जैसे–गत्वा>गन्तूनं, चलित्वा>चलितूनं।
5. भविष्यत् काल में 'रिस' का आदेश न होकर 'एय्य' का प्रयोग किया जाता है। यथा–भविष्यति>हुवेय्य।
6. 'ज्ञ', 'न्य', व 'ण्य' के स्थान पर णं होता है, जैसे प्रज्ञा>पणां, पुण्य>पुंणं।

7. 'त' व 'द' के स्थान पर 'त' ही होता है जैसे शत>सत, मदन>मतन, देव>तेय।

8. शौरसेनी के 'दि' व 'दे' प्रत्ययों की जगह ति व ते होता है। जैसे रमति>रमते।

3. अपभ्रंश (500 ई. से 1000 ई. तक)

मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा का अन्तिम रूप अपभ्रंश है। इस भाषा का विकास प्राकृत काल की बोलचाल की भाषा से ही हुआ है। यह प्राकृत और आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के बीच की कड़ी मात्र है। इसके अन्य नाम भी हैं, जैसे ग्रामीण भाषा, देशी, देशभाषा, आभीरादि, अपभ्रंश, अपहंस, अवहत्य, अवहट्ठ आदि। अपभ्रंश का अर्थ होता है, बिगड़ा, भ्रष्ट या गिरा हुआ। 500 ई. से 1000 ई. तक की मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा के लिए अपभ्रंश शब्द का प्रयोग किया गया है।

'अपभ्रंश' नाम और समय

अपभ्रंश शब्द के दो अर्थ होते हैं। एक तो संस्कृत से विकृत तद्भव शब्दावली और दूसरा भाषा–विशेष के अर्थ में। तद्भव शब्दों के लिए इसका सर्वप्रथम उल्लेख **महाभाष्यकार पतंजलि** ने दूसरी शताब्दी ई.पू. में किया था। तत्सम शब्दों के विकृत रूपों को पतंजलि ने अपभ्रंश कहा है। छठी सदी में भामाह के 'काव्यालंकार' और **चंड** के 'प्राकृत लक्षणम्' में अपभ्रंश शब्द का भाषा के अर्थ में प्रयोग किया गया है। भामाह ने भाषाओं की गणना करते समय संस्कृत और प्राकृत के पश्चात् अपभ्रंश का उल्लेख किया है। **चण्ड** ने उसके 'रेफ' सम्बद्ध लक्षणों को प्रकट किया है। इन दोनों महानुभावों ने केवल संकेत मात्र दिया है, विस्तार से कुछ नहीं कहा। इन दोनों से भी पहले तीसरी शताब्दी में **भरत मुनि** ने अपभ्रंश भाषा का सांकेतिक अर्थ में सर्वप्रथम प्रयोग किया है। भरतमुनि ने जिस 'उकार बहुला' भाषा का उल्लेख किया है, वह अपभ्रंश ही है। उन्होंने इसे अपभ्रंश नाम से नहीं पुकारा। इससे यह निष्कर्ष तो निकाला ही जा सकता है कि भरत मुनि के समय में ही अपभ्रंश भाषा प्रकाश में आ चुकी थी, पर उसका नामकरण नहीं हुआ था। इसे हीन और असभ्य तथा वनवासी लोगों की भाषा समझा जाता था, किन्तु नाटकों में उसका प्रयोग होने लगा था। यह भरत मुनि की 'उकार बहुला' भाषा आभीरादि लोगों की ही भाषा थी।

सातवीं शती में **दण्डी** ने अपभ्रंश का उल्लेख किया और उसे 'आभीरादि गिरः' कहा। यह विशेषण भरत मुनि के 'शकाराभीर' आदि से भिन्न नहीं है। **डॉ. नामवर सिंह** ने भाषा के अर्थ में अपभ्रंश का प्रयोग छठी शताब्दी से स्वीकार किया है। सत्य तो यह है कि भरत मुनि ने बिना नाम लिये अपभ्रंश के 'उकार बहुला' लक्षणों को तीसरी शताब्दी में ही प्रकट कर दिया था। हो सकता है, उस समय की किसी बोली ने भरत के समय साहित्यिक परिनिष्ठित रूप धारण न किया हो। अपभ्रंश भाषा का सर्वप्रथम लिखित रूप **कालिदास** के 'विक्रमोर्वशीय' नाटक के चतुर्थ अंक में मिलता है। छठी सदी और सातवीं सदी तक अपभ्रंश एक महत्वपूर्ण और समृद्ध भाषा बन चुकी थी। इस भाषा पर अधिकार प्राप्त करना लोग गौरव की वस्तु समझते थे। **राजा धरसेन** ने एक ताम्र पत्र में अपने पिता को संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषा में निपुण बताया है। छठी शताब्दी से लेकर बारहवीं–तेरहवीं शताब्दी तक अपभ्रंश भारत की एकमात्र साहित्यिक भाषा के रूप में विद्वानों के कण्ठों की शोभा बनी रही। हाँ, यह सही है कि बोलचाल की भाषा के रूप में इसका प्रयोग 1000 ई. के आसपास ही समाप्त हो गया था। हेमचन्द्र जब अपभ्रंश का व्याकरण लिख रहे थे, तब यह भाषा अपने पूर्ण उत्कर्ष पर थी। अपभ्रंश भाषा में **रइधू** का 'करकंड चरिउ', **धर्मेसुरि** का 'जम्बू स्वामी रासा', **पुष्पदन्त** का 'आदि पुराण', **रामसिंह** का 'पाहुड दोहा', **स्वयंभू** का 'पउम चरिउ' और **धनपाल** का 'भविसयत्त कहा' आदि प्रसिद्ध ग्रन्थों की रचना की गई, जो आज उपलब्ध हैं।

अपभ्रंश का विकास और इसके भेद

अपभ्रंश भाषा की प्रारम्भिक विशेषताएँ पश्चिमोत्तर प्रदेशों में प्रकट हुईं। **प्रो. कीथ** ने इसे आभीरों और गूजरों की भाषा बताया है। **डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी** अपभ्रंश को मध्यप्रदेश की भाषा मानते हैं। **डॉ. बाबूराम सक्सेना** भी मध्य–प्रदेश या शौरसेनी से उत्पन्न ही इसे स्वीकार करते हैं।

अपभ्रंश के भेद भी विवादास्पद हैं। **'विष्णु धर्मोत्तर'** में अपभ्रंश के अनन्त भेदों का उल्लेख है। **नमि साधु** ने इसके तीन भेद स्वीकार किये हैं–उपनगर, आभीर और ग्राम्य। **मार्कण्डेय** ने भी तीन ही भेद स्वीकार किये हैं किन्तु नभि साधु से भिन्न। मार्कण्डेय ने नागर, उपनागर और ब्राचड भेद मानते हुए भी अपने 'प्राकृत सर्वस्व' ग्रन्थ में यह भी कहा कि सूक्ष्म अन्तर से विद्वान इसके सत्ताईस भेद मानते हैं। इन 27 अपभ्रंशों में ब्राचड, लाट, वैदर्भ, उपनागर, नागर बार्बर, अवन्त्य, मागध, पाँचाल, ढक्क, मालव, कैकय, गौड़, औढी, वैवपश्चात्य, पाण्डय, कौन्तल, सैंहल, कालिंग, प्राच्य, कार्णाट, काँच्य, द्राविड, गौजर, आभीर, मध्यदेशीय और वैताल सम्मिलित हैं। **मार्कण्डेय** ने यह भी स्वीकार किया था कि ब्राचड अपभ्रंश सिंध की, नगार गुजरात की और उपनागर मिश्रित भाषा है। मार्कण्डेय से पूर्व आठवीं शती में **उद्योतनाचार्य** ने अपनी 'कुवलयमाला कहा' में अपभ्रंश की बोलियों के आधार पर उनके 18 भेद बताये थे। ये हैं–गोल्ल, मध्यदेशीय, मागध, अन्तर्वेदी कीर, ढक्क, सिंध, मरु, गुर्जर, लाट, मालव, कार्णाटक, तथिक, कौसल, महाराष्ट्र, आन्ध्र, खस, वब्बराचिक। छठी सदी तक अपभ्रंश ने काव्यभाषा का पद ग्रहण कर लिया था और हेमचन्द्र तक आते–आते यह पूर्ण परिनिष्ठित हो चुकी थी और यह शिष्टों की भाषा हो चुकी थी, उस समय भारत में विचारों के आदान–प्रदान की एक ही सार्वजनिक भाषा मानना उपयुक्त नहीं होगा, जिसका व्याकरण हेमचन्द्र ने लिखा अपितु अपभ्रंश की अनेक बोलियाँ उस समय प्रचलित थीं। इन्हीं विभिन्न बोलियों से आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का विकास हुआ है।

श्री पुरुषोत्तम देव के प्राकृतानुशासन में वैदर्भी, लाटी, औड्री, कैकेय, गौड़ी और ब्राचड अपभ्रंशों का उल्लेख है, **याकोबी** ने ''सनतकुमार चरिउ'' के आधार पर अपभ्रंश के चार भेद किये हैं–पूर्वी, पश्चिमी, दक्षिणी और उत्तरी। **डॉ. तगारे** ने उत्तरी अपभ्रंश को निकाल कर तीन भेद किये हैं। **डॉ. नामवर सिंह** ने दक्षिणी भेद को व्यर्थ मानकर अपभ्रंश के केवल दो ही भेद बताये हैं।

निष्कर्ष

अपभ्रंश में विपुल साहित्य प्राप्त है जो परिनिष्ठित भाषा में है। स्थान भेद के कारण इसके स्थानीय रूपों का विकास हुआ है। प्राकृत काल में जो बोलियाँ जनता की बोलचाल में काम आती थीं, वे अपभ्रंश काल में और भी स्पष्ट होने लगी थीं। यही प्रवृत्ति आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के रूप में सामने आई। सन् 1400–1500 के आसपास उत्तर भारत में इसके 13 रूप प्रचलित थे। पंजाबी, लहँदा, सिधी राजस्थानी, गुजराती, मराठी, खड़ी बोली, ब्रज, अवधी, छत्तीसगढ़ी, पहाड़ी, भोजपुरी, मगही, मैथिली, उड़िया, असमी, बंगाली आदि आधुनिक भाषाएँ उभर रही थीं। इससे स्पष्ट है कि **नामवरसिंह** का मत अनुपयुक्त प्रतीत होता है, क्योंकि प्राकृत में 5 साहित्यिक प्राकृतें हैं और आधुनिक आर्य भाषाएँ सत्रह या तेरह हैं। इन पाँच और तेरह को जोड़ने वाली कड़ियाँ दो नहीं हो सकतीं। संस्कृतकाल में उदीच्य, मध्यदेशीय और प्राच्य तीन रूप बोलियों के थे जो बढ़ ही सकते थे, कम नहीं हो सकते थे। जैसे आज राजस्थान से मिथिला तक साहित्य सृजन खड़ी बोली में होता है, किन्तु स्थान–भेद के अनुसार इस बहुत बड़े भू–भाग में सैकड़ों बोलियाँ बोली जाती हैं। इसलिए यह तो निश्चित ही है कि अपभ्रंश के रूपों की संख्या **याकोबी**, **तगारे** या **नामवर सिंह** की संख्याओं–चार, तीन और दो से अधिक ही रही होंगी, तभी उससे 13 उपभाषाएँ निकल सकती हैं।

एक अनुमान (डॉ. उदयनारायण तिवाड़ी) के अनुसार कम से कम सात अपभ्रंश रही होंगी, जिनसे 13 आधुनिक भारतीय भाषाएँ विकसित हुई हैं–

1. शौरसेनी अपभ्रंश से पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती।
2. पैशाची अपभ्रंश से लहँदा और पंजाबी।

3. ब्राचड़ अपभ्रंश से सिंधी।
4. खस अपभ्रंश से पहाड़ी भाषाएँ।
5. महाराष्ट्री अपभ्रंश से मराठी।
6. अर्द्ध मागधी अपभ्रंश से पूर्वी हिन्दी।
7. मागधी से बिहारी, उड़िया, बंगाली, असमी।

अपभ्रंश की विशेषताएँ

(1) अपभ्रंश में प्राकृत भाषाओं की समस्त स्वर और व्यंजन ध्वनियाँ उपलब्ध हैं। इस समय ह्रस्व ऍ, ओ, ड़, ढ, ध्वनियाँ मौजूद थीं। 'ऋ' का प्रयोग केवल लिखने में होता है, इसकी ध्वनि (उच्चारण) समाप्त होकर 'रि' रह गई। श, ष, के स्थान पर केवल एक 'स' मिलता है। मागधी अपभ्रंश केवल एक ऊष्म 'श' ही उपलब्ध है। महाराष्ट्री अपभ्रंश में 'ल' भी मिलता है।

(2) स्वरों के अनुनासिक रूप पूर्ववत दिखाई देते हैं।

(3) पालि और प्राकृत के समान अपभ्रंश में संगीतात्मक और बलात्मक स्वराघात की प्रवृत्ति है किन्तु झुकाव बलात्मक स्वराघात की ओर ही अधिक है।

(4) अपभ्रंश 'उकार बहुल' भाषा है। इसके अवशेष अवधी और ब्रज भाषा में आज भी देखे जा सकते हैं। यथा–एक्कु, अंगु, जगु आदि।

(5) पालि–प्राकृत की भाँति ध्वनि–परिवर्तन की प्रवृत्ति–लोप, आगम, विपर्यय समीकरण, विषमीकरण आदि आगे बढ़ती दिखायी देती है।

(6) शब्द के अन्त का स्वर अपभ्रंश में ह्रस्व होता गया। कभी–कभी अन्तिम स्वर का लोप भी हो जाता है, कीटक>कीडअ>कीड।

(7) आदि अक्षर पर स्वराघात के कारण वह सुरक्षित रहा। जैसे घोटक>घोडअ>घोडा, छाया>छाआ, आमलक>आमलअ>आँवला।

(8) अपभ्रंश में 'म' का 'व' में तथा 'व' का 'ब' में आदेश होता है। यथा–कमल>कँवल, बचन>बउण।

इसी प्रकार 'ष्ण' का 'न्ह' जैसे–कृष्ण>कान्हा; 'क्ष' का 'क्ख', जैसे पक्षी>पक्खी; 'य' का 'ज' जैसे–युगल>जुगल; तथा उ, द, न, र के स्थान पर 'ल' मिलता है।

(9) समीकरण हुए प्राकृत व्यंजनों में से अपभ्रंश में एक व्यंजन बचता है और क्षति पूर्ति के रूप में पूर्व स्वर का दीर्घीकरण हो जाता है। यथा–तस्य >तस्स>तासु (अपभ्रंश), कस्य >कस्स>कासु।

(10) अपभ्रंश संस्कृत परम्परा से अलग है। उसका झुकाव आधुनिक भारतीय भाषाओं की ओर है।

(11) अपभ्रंश में धातु और नाम रूपों में पर्याप्त कमी आई जिससे भाषा सरल और सुगम हो गई।

(12) वैदिकी, संस्कृत, पालि और प्राकृत ये चारों भाषाएँ संयोगात्मक थीं, प्राकृत में वियोगात्मकता के कुछ लक्षण दिखाई देने लगे थे। अपभ्रंश अधिक वियोगात्मक हो गई थी।

(13) प्राकृत में संज्ञा और सर्वनाम के कारण चिह्न दो या तीन ही थे जो अपभ्रंश में और अधिक बढ़ गये। जैसे–करण–तणः सम्प्रदान–केहि; अपादान–थिउ, होन्त; सम्बन्ध–केर, कर का; अधिकरण–महे–मज्झे।

(14) संयोगात्मक भाषाओं में 'तिङ्' प्रत्यय के कालरूप बनते थे जो कि वियोगात्मक में सहायक क्रिया से बनने लगे तथा कृदन्तीम रूपों से काल–रचना की जाने लगी और संयुक्त क्रिया का प्रयोग भी होने लगा।

(15) तीनों लिंगों में से नपुंसक लिंग का प्रयोग समाप्त हो गया।

(16) अकारान्त पुल्लिग शब्दों की भाषा में प्रमुखता हो गई। उन पर नियम लागू हुए जिससे भाषा में एकरूपता आई।

(17) कारक रूपों में कमी आई। संस्कृत में 17, प्राकृत में 12 काल रूप थे जो अपभ्रंश में घटकर केवल 6 रह गये। दो वचन, तीन कारक (कर्त्ता, कर्म, सम्बोधन), (करण, अधिकरण), (सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध)। इस प्रकार कुल 6 रूप ही अपभ्रंश में हैं।

(18) अपभ्रंश में स्वार्थिक प्रत्यय 'ड़' का प्रयोग होने लगा। जैसे–राजस्थानी में आँसूड़ा, आँखड़ी आदि।

(19) वाक्य में शब्दों का स्थान निश्चित हो गया।

(20) शब्द–भण्डार की दृष्टि से तद्भव शब्दों में प्रचुर वृद्धि हुई। अनेक देशज शब्द काम में लाये जाने लगे। ध्वनि और दृष्टि के आधार पर नये शब्दों का निर्माण भी किया गया। अपभ्रंश के उत्तरार्द्ध में पुनः तत्सम शब्दों का प्रचार बढ़ने लगा था। इस समय तक विदेशी (मुसलमान) भारत में पाँव जमाने को प्रयत्नशील थे, अतः उनसे सम्पर्क बढ़ने के कारण विदेशी शब्द भी अपभ्रंश से मिश्रित होने लगे थे। जैसे–ठट्ठा (फारसी–तश्त), ठक्कुर (तुर्की–तेगिन), नीक, तहसील, नौबती आदि।

सक्रांति काल की भाषा अवहट्ठ

500 ई. से 1000 ई. तक अपभ्रंश एक अखिल भारतीय साहित्यिक तथा सांस्कृतिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित रही। अपभ्रंश मध्य प्रदेश की भाषा होने से विशेष महत्त्वपूर्ण और प्रभावशाली रही है। उस समय दैनिक व्यवहार के लिए भिन्न–भिन्न बोलियाँ प्रचलित थीं। उन्हीं बोलियों से हमारी आज की आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ विकसित हुई हैं।

जब ये बोलियाँ विकसित होकर साहित्यिक भाषा बनने का प्रयत्न कर रही थीं, उस समय साहित्यकारों की परिष्ठित अपभ्रंश में विशेष परिवर्तन के लक्षण दिखाई देने लगे थे। ऐसा लगता है कि कोई एक भाषा स्थानीय प्रभाव ग्रहण करके अपभ्रंश की भूमि पर अपना अस्तित्व बना रही थी। 1000 ई. के बाद लगभग दो–तीन सौ वर्षों की यह भाषा विभिन्न नामों से जानी गई। कुछ समय तक प्राचीन परम्परा के अनुसार इसे देशी भाषा कहा जाता रहा, किन्तु जब इसमें साहित्य सृजन प्रचुरता से होने लगा होगा तो वैयाकरणों ने इसे 'अवहट्ठ' की संज्ञा प्रदान की। यह भाषा अपभ्रंश के अन्तिम छोर और आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के प्रारम्भिक छोर पर है। इसने अपभ्रंश और आधुनिक भाषाओं के मध्य कड़ी का काम किया है। कई विद्वान इसे परवर्ती अपभ्रंश, पुरानी हिन्दी, देशी भाषा आदि नामों से भी पुकारते हैं किन्तु उपयुक्त नाम 'अवहट्ठ' ही है।

'अवहट्ठ' शब्द का भाषा–विशेष के अर्थ में सर्वप्रथम प्रयोग अब्दुल रहमान ने 'संदेश रासक' में किया है। संस्कृत प्राकृत पैशाची के साथ 'अवहट्ठ' भाषा को रखने का तात्पर्य यही है कि 'अवहट्ठ' यहाँ अपभ्रंश का ही पर्याय है। चौदहवीं सदी में ज्योतिरीश्वर और विद्यापति ने भी 'अवहट्ठ' शब्द का प्रयोग भाषा के अर्थ में ही किया है। विद्यापति ने भी अवहट्ठ का प्रयोग अपभ्रंश के लिए ही किया है। अतः अवहट्ठ और अपभ्रंश भिन्न न होकर एक ही भाषाएँ हैं।